समर्पण

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ गीता ॥

महर्षियोंने अपने तपसे ब्रह्म-धनका उपार्जन किया था। उन ऋषियोंने संसारके हम सब मनुष्योंको निर्व्याज होकर शिष्य, पुत्र और मित्र समझकर वह धन सौंप दिया। हम उनके इस ऋणका कोटि जन्मोंमें भी परिशोध नहीं कर सकते। हम उस अमूल्य धनकी रक्षा, वृद्धि तथा जीवन भरमें उपयोग करते हुए उन ऋषियोंके दिखाये मार्गपर चलकर ही उनके ऋणसे मुक्त हो सकते हैं। इस कारण तुच्छ अनुशीलन-लताका यह अधखिला फूल मैं उन्हींके चरण-कमलोंमें समर्पित करता हूं।

'शान्त'

॥ओ३म्॥

प्रकाशकका निवेदन

प्राचीन कालमें जिस समय भारतवर्षकी सभ्यताका सूर्य्य अपने प्रखर तेजसे संसार भरमें चमक रहा था, उस समय भारतकी पवित्र भूमि ज्ञान और कर्मोंके पवित्र स्रोतोंका निकास बन रही थी। देश-देशान्तरसे लोग यहाँ आते थे और यहाँके ऋषियों, मुनियों तथा आचार्योंसे ज्ञान और सदाचारकी शिक्षा लेकर अपने देशमें उस ज्ञान और आचारकी शिक्षा देते थे। उस समयमें तीर्थों, आश्रमों और ज्ञानियोंकी सभाओंमें सर्वत्र वेदका श्रवण और मनन होता था। उपनिषदोंके ज्ञानकी कथाएँ होती थीं और धर्म्मशास्त्रों का निरन्तर पठन-पाठन हुआ करता था। भारतके दौर्भाग्य और कालके प्रभावसे अब वह सब प्रचार उठ गया है। वेदोंका पठन-पाठन, उपनिषदोंका श्रवण-मनन तथा ज्ञान-कथाओंका उपकथन अब सर्वथा लोप हुआसा दीखता है। इस कारण बड़े शोकसे कहते बनता है कि, लोगोंकी धर्म-पिपासा और ज्ञानकी बुभुक्षा बिना तृप्त हुए ही रह जाती है। बिना ज्ञान-रसके जीवन व्यर्थ जाता है और अन्तःकरणमें शान्ति नहीं आती।

पहले उपनिषदोंकी शान्तिप्रद कथाएँ वन-उपवन, तीर्थ, आराम और मुनियोंके आश्रमोंमें सर्वत्र ही हुआ करती थीं। नगर-वासी गृहस्थ अपने अन्तःकरणकी शान्तिके लिये कथा सुननेके

निमित्त तीर्थ-यात्रा तथा साधु-महात्माओंके दर्शनके व्याजसे वहाँ जाते और वास्तविक शान्तिका लाभ करते थे।

अब तो वे सब बातें लुप्तही हो गयी हैं, तो भी अभी बहुतसा अवसर है कि, हम नित्य वेद, उपनिषद् तथा धर्मशास्त्रोंका श्रवण करें, उनपर विचार करें और उनमें लिखे ज्ञान तथा उपदेशोंको अपने जीवनमें ढालें।

इसमें सन्देह नहीं कि, प्राचीन धर्म-शास्त्र तथा उपनिषदें और वेद बड़े गम्भीर ज्ञानोंके भण्डार हैं। उनकी भाषा संस्कृतका वर्तमानमें चलन न होनेके कारण उनका सहजमें समझना साधारण लोगोंके लिये कठिन है। इस भाषाकी कठिनताको अनुभव करके ही लोग प्रायः उनका पठन-पाठन छोड़ देते हैं और जो स्वाध्याय करना भी चाहते हैं उनको भी सरल भाषामें ग्रन्थ न मिलनेके कारण निराश होकर अपना मनोरथ छोड़ देना पड़ता है। मेरा सब भाइयोंसे एक यह निवेदन है कि, वेद,, उपनिषद् तथा धर्मशास्त्रके पठन-पाठनमें कभी आलस्य न करें। चाहे भाषाकी कठिनता और भावोंकी गम्भीरताके कारण कथाएँ पहले पहल समझमें न आवें, परन्तु यह बात याद रखनी चाहिये कि, थोड़ासा भी श्रम करनेसे वेद और उपनिषदोंका ज्ञान शनैः शनैः समझमें आने लगता है तथा हृदयमें बड़ी शान्ति पैदा होती है।

इसी प्रयोजनसे यह छोटीसी पुस्तक मैंने प्रकाशित करायी है, जिसे पढ़कर सभी लोग उपनिषदोंके वचनोंका श्रवण और मनन करके हृदयकी शान्तिका सुख लें।

सब उपनिषदोंमें मुख्य उपनिषद् दस ही हैं। ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक। ये सब उपनिषदें वेदके आध्यात्मिक ज्ञानकी व्याख्या और उपदेश करती हैं। बहुतोंका विचार है कि वेदमें आध्यात्मिक ज्ञानका भाग नहीं है। उपनिषदें पीछेसे अलग ऋषि-मुनि लोगोंने बनायी हैं। परन्तु यह उन लोगोंका भ्रम ही है। क्योंकि सब उपनिषदोंमें नयी बात कुछ भी नहीं है, वे सभी वेदके मन्त्रोंमें कहे आध्यात्मिक ज्ञानको ही रूपान्तरमें व्याख्या करती हैं। जैसे उदाहरणके लिये आप ईश-उपनिषद्को ही ले लीजिये।

ईशोपनिषद् यजुर्वेदका ४० वाँ अध्याय ही है। इस कारण ईशोपनिषद् वेदका स्वतः एक भाग है और शेष सब उपनिषदें इसी उपनिषद्की विशेष व्याख्याएँ हैं। बृहदारण्यक उपनिषद्, जो सब उपनिषदोंमें सबसे बड़ी है, यजुर्वेदके ब्राह्मण शतपथका अन्तिम भाग है और यह यजुर्वेदके ४० वें अध्यायका व्याख्यान है। इसी प्रकार छान्दोग्य उपनिषद् सामवेदके छान्दोग्य ब्राह्मणका एक भाग है। काठक आदि अन्य उपनिषदें भी वेदके भाग तथा उनके व्याख्यारूप नाना ब्राह्मण-ग्रन्थोंके ही भाग हैं। यह सब जानकर इस भ्रममें न पड़ना चाहिये कि, वेद उपनिषदोंसे भिन्न हैं। परन्तु वेद तो स्वयं उस ब्रह्मका सबसे प्रथम निरूपण करते हैं।

" सर्वे वेदाः यत्पदमामनन्ति

तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति

।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति ...

तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ओमित्येतत् ।"

जिस परम पदका सब वेद उपदेश करते हैं, सब तप जिसका उपदेश करते हैं, जिसके प्राप्त करनेकी इच्छासे ब्रह्मचर्य व्रतका पालन करते हैं, उसके परम पदको मैं संक्षेपसे कहता हूं, वह 'ओ३म्' पद है।

अर्थात् उपनिषद् स्वयं कहती है कि, सब वेद उसी परम पद ब्रह्म 'ओ३म्' का उपदेश करते हैं। उपनिषद् भी उसी 'ओ३म्' का उपदेश करती है। सर्व साधारणमें एक यह भी भ्रम फैल गया है कि, जीव ब्रह्मको एक मानकर सबको ब्रह्म ही ब्रह्म मानना, संसार भरको माया कह देना तथा इसी विषयपर घण्टों तर्क करना वेदान्त कहाता है। ब्रह्म-ज्ञानकी ऐसी दुर्दशा देखकर चित्तमें बड़ा खेद होता है। नाना प्रकारके तर्क-वितर्कोंमें समय खो देनेसे न कुछ ज्ञान प्राप्त होता है और न आत्माको शान्ति ही मिलती है। साथ ही मनुष्य वेदके सत्य उपदेशसे भी सदाके लिये वंचित हो जाता है।

वास्तवमें वेदान्त यही उपनिषद् है। यजुर्वेदके अन्तका भाग ईशोपनिषद् है। जिस समय यज्ञ-कर्मों द्वारा सम्पूर्ण वेदके उपदेश क्रिया-रूपसे जान लिये जाते हैं, तब जीवनके शेष भागमें ब्रह्म-ज्ञानका मनन किया जाता है। यही वेदका प्रतिष्ठा-भाग होनेसे वेदान्त कहा जाता है। वेदका ज्ञानमय सिद्धान्त ही वेदान्त कहाता है। सम्पूर्ण यज्ञ-कर्म इसी ब्रह्म-सिद्धान्तपर आश्रित

हैं। इसीसे यह उपनिषद् भाग वेदका परम सार, अन्तर्हृदय, गूढ़ तत्व कहा जाता है। यही सब वेदोंका परम निर्णय है। सब यज्ञ, तप, जप, तर्क, इसी ब्रह्म-सिद्धान्तपर आश्रित हैं, जिसका प्रतिपादन ईशोपनिषद् करती है।

उपनिषदोंमें प्रतिपादित ज्ञान केवल एक वारके सुननेसे ही हृदयमें नहीं बैठता। वार वार श्रवण, वार वार मनन और निदिध्यासन करनेसे इसका रहस्य खुलता है। बड़े बड़े तत्व-ज्ञानी उपनिषद्के रहस्यके मनन करनेमें अपना जीवन लगा देते थे। वे उसका ज्ञान करनेके लिये बड़े-बड़े तपस्वी ज्ञानी गुरुओंकी उपासना करते थे। वे वैराग्यनिष्ठा और व्रतको धारण करके ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करते थे। इसीसे ये उपनिषद् कहाती हैं। (उप=पास, निषद्=बैठना) गुरुके पास बैठकर इनके रहस्यका ज्ञान प्राप्त किया जाता था। इसके अतिरिक्त ब्रह्म-ज्ञानके वलसे अल्प-ज्ञानी जीव अपने परम गुरु ज्ञानमय परब्रह्मके समीप पहुंचता है। इस कारण भी गुह्य-ज्ञान देनेहारे मन्त्रोंको उपनिषद् कहा जाता है।

इन उपनिषदोंका सत्य ज्ञान प्राप्त करने और अन्योंको उसका उपदेश करनेके लिये बड़े तप, सत्य और साधनाकी आवश्यकता होती है। विशाल तपस्या और निष्ठासे ही इस पवित्र ज्ञानको पानेके अधिकारी होते हैं। प्रश्नोपनिषद्में आप देख सकते हैं कि, भगवान् पिप्पलाद ऋषिके पास जिस समय ऋषि लोग आये और ब्रह्म जाननेकी इच्छा प्रकट की तव भगवान् पिप्पलादने कहा :—

"भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं

स'वत्सरम्यथ यथाकामं प्रश्नान्पृच्छथ,

यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्यामः ! प्रश्न"

"हे ऋषियो ! आप लोग एक वर्ष और ब्रह्मचर्यका पालन तप और श्रद्धा-पूर्वक करो, फिर यथेच्छ प्रश्न पूछना। यदि मुझे उनका ज्ञान होगा तो अवश्य कहूंगा।"

प्रिय भाइयो ! ऋषि लोग कितने निष्कपट, निश्छल, उदार तथा सत्यवादी होते थे। वे तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धासे ज्ञान प्राप्त करते और ऐसे ही पुरुषको ज्ञानका सत्य हृदयसे उपदेश करते थे।

वर्त्तमानमें हम लोगोंमें इन सभी योग्यताओंका अभाव है। हमारा अनायास उस पवित्र ब्रह्म-ज्ञानको पा लेना एक उस बौने पुरुषके समान है, जो खजूरके नीचे अपने हाथ उठाकर ही फल तोड़ लेना चाहता है।

तिसपर भी हमें हतोत्साह न होना चाहिये। हमारा परम कर्त्तव्य है कि, हम उपनिषदों और वेद-वाक्योंका पवित्र ज्ञान प्राप्त करनेमें सदा यत्नवान् रहें। विद्वानों और ज्ञानी पुरुषोंके बनाये ग्रंथोंका स्वाध्याय करें। उनका यथाशक्ति प्रकाश करके आत्माकी सच्ची शक्तिका अनुभव करें और अन्योंको भी करावें। मेरे हृदयमें चिरकालसे यह इच्छा थी कि, उपनिषदोंके गूढ़ रहस्योंको अत्यन्त सरल भाषामें खोल-खोलकर मनोरंजक रूपमें सर्वसाधारण को समझाया जाय तो लोगोंका बड़ा उपकार हो। गत कुछ दिनोंमें आर्यकुमारसभा कलकत्ताने स्थानीय आर्य-समाज मन्दिरमें अपने साप्ताहिक अधिवेशनमें उपनिषदोंकी कथाएं करानेका प्रबन्ध

किया। श्रीमान् पण्डित जयदेव शर्म्मा विद्यालंकारने इस अवसर पर बड़े मनोरञ्जन-रूपमें क्रमसे उपनिषदोंकी कथा कही, जिसको सुनकर बहुतसे कलकत्तानिवासी लोग बड़े प्रसन्न हुए। मेरी यह इच्छा बनी रही कि, यदि इन कथाओंको उक्त पण्डितजी लेखबद्ध कर दें तो उनका प्रकाशन कर देनेसे बड़ा लोकोपकार हो।

मैंने अपना यह अभिप्राय श्रीमान् पण्डितजीसे प्रकट किया। आपने बड़े मनन और विचार-पूर्वक उपनिषद्की गूढ़ बातोंको बड़े सरल और मनोरञ्जक-रूपमें लिखकर यह छोटीसी पुस्तक तैयार की।

मेरी हार्दिक इच्छा है कि, मेरे अन्य स्वजातीय भाई अवश्य उपनिषदोंका स्वाध्याय करें और उनका मनन करें। वे इस पुस्तकको पढ़कर उपनिषदोंके लिखे सच्चे शान्तिमय जीवनके कर्मपथका अवलोकन करें।

मैं अपने परिश्रमको तभी सफल समझूंगा, जब ज्ञानके पिपासु प्रेमीगण इस पुस्तकमें दर्शाये शांतिके मार्गका अवलोकन करेंगे और उसपर चलकर सच्ची शांति प्राप्त करनेमें यत्नवान् होंगे।

१४ बी०, सेण्ट्रल एवेन्यू रोड, कलकत्ता।	भवदीय निवेदक जयनारायण रामचन्द्र।

॥ ओ३म् ॥

लेखककी भूमिका

मनुष्य तो सुख और शांतिका उपासक है। सुख-साधन मिलें तो सही, परन्तु यदि उनके साथ शान्ति न मिले तो ऐसे सुख-साधनोंका कोई मूल्य नहीं। यदि शान्ति प्राप्त हो, परन्तु उस दशामें सुखसाधन न मिलें तो वह शान्ति भी नीरस है। सांसारिक भोग-विलासोंमें नित्य प्रति ऐसे ही दृश्य घटित होते हैं, जिनमें कहीं शान्ति है तो सुख नहीं, सुख है तो शान्ति नहीं। बड़े-बड़े धनाढ्य पुरुषोंके पास धन है, भूमि है, मकान है; पर तो भी शांति नहीं मिलती। वे कभी सोचते हैं कि, अच्छा, और सुख-सामग्री संचय कर लें, फिर शांतिसे भोग करेंगे। परन्तु जिस अशान्ति, चिंता और कष्टमय तथा छल-कपटमय साधनोंसे वे सुख-सामग्रीका सञ्चय करते हैं वही अशान्ति, चिंता, कष्ट और छल-कपट आदि फिर भी उसको सताते रहते हैं। कारण यह है कि, जैसा कारण होता है वैसा ही कार्य्य होता है। अशान्ति, चिंता, कष्ट, कपट, छल इनसे जो धन-सामग्री उत्पन्न होती है, उससे शांति, सुख, निश्चिन्तता तथा हृदय के सौम्य भाव कभी उत्पन्न नहीं हो सकते। उस धन-सामग्रीसे तो वही वस्तुएं पैदा होंगी, जहांसे वह स्वयं पैदा हुई हैं। इसी प्रकार निर्धन पुरुषोंके पास धन-सामग्री भोग करनेके लिये नहीं होती

और उनको धनाढ्योंके समान अधिक व्याकुलता नहीं। तो भी अपेक्षया उनको पर्याप्त शान्ति है, परन्तु सुख-सामग्रीका वे भोग कर नहीं सकते; अतः उनका भी चित्त सन्तुष्ट नहीं रहता। उनकी दशा उस भूखेके समान है जिसको भिक्षा करनेपर भी पेटभर भीख नहीं मिलती और राजदण्डके भयसे वह चोरी-डकैती करनेसे भी डरा करता है और वह अपने मनको मारकर हारकर बैठा रहता है।

जीवनकी सच्ची शान्ति और सुख वस्तुतः अध्यात्म-मार्गमें है। अपनी आत्माका ज्ञान करे, अपने सर्वस्व कर्मोंका त्याग करके उस परब्रह्मपर विश्वास रखे। उसके दिये पदार्थोंसे अपने जीवन और आत्माकी रक्षा करते हुए सदा पुरुषार्थसे कार्य्य करता रहे। फल पानेके लिये अधिक आतुरता न करे। क्योंकि :—

"यथा गवां सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा कर्मफलं भूयः, कर्त्तारमनुगच्छति॥"

जिस प्रकार सहस्रों गौवोंके रहते हुए भी बछड़ा अपनी मांके पास चला ही जाता है, उसी प्रकार यह कर्म-फल भी कर्मके करनेवालेको ही प्राप्त होता है। तब फिर उसके लिये चिन्ता क्यों करनी। चिन्ता करनी है तो कर्मफलके लिये न करे, प्रत्युत कर्मफलके पानेवाले या दूसरे शब्दोंमें कर्म करनेवालेकी करे। कर्म करनेवाला तो यह आत्मा ही है।

इस आत्माका ज्ञान कर लेना इस लिए आवश्यक है कि, विना आत्मज्ञान किये कर्मोंके प्राप्त हुए फलका सुख-शान्तिसे उपयोग भी नहीं हो सकता। जिस प्रकार व्यापारका फल व्यापारी

को मिलता है। यदि वह व्यापारी अपने व्यापारसे प्राप्त धनको औरोंसे प्राप्त करनेके समय मद आदि पी कर बेहोश हो हो कर अपनी सुधबुध भूल जाय तो उसके कोषमें आये रुपयेको उसके नौकर-चाकर चुरा लेते हैं तथा नष्ट कर देते हैं। वह व्यापारी उस धनका न भोग कर सकता है और न आत्मोन्नति ही। उसी प्रकार अपने आपको भूला हुआ यह अल्पज्ञ जीव स्वयं कर्ता होकर भी विषय-वासनाओंसे मत्त रहता है। उसको अपने जीवनमें किये सुकर्मोंका फल मिलता भी है, तो भी उसके नौकर इंद्रिय आदि उस फलको सदुपयोगमें न लेकर व्यर्थ गवा देते हैं और मालिकको उसकी कुछ खबर भी नहीं रहती। यदि वह अपनी होशमें रहे तो ऐसा न होने पावे।

इसी प्रकार पाप-कर्मोंका फल बुरा होता है। वह आत्माको नीचे ढकेलता है। जैसे बेहोश आदमीको धक्का देनेपर वह गढ़ोंमें गिर जाता है, वह आप संभल नहीं सकता; पर होशवाला सचेत पुरुष बड़े-बड़े कड़े धक्कोंकी भी धैर्यसे सह लेता है और नहीं गिरता है, उसी प्रकार वह भूला भटका आत्म ज्ञानसे रहित मद-मोहित जीव अपने बुरे कर्मोंकी वासनाओंसे प्रेरित होकर बुरी योनितोंमें ढकेला जाता है और वहां दुःख पाता है। यदि वह बुरी योनियोंमें गिरानेवाले धक्कों के लगनेके पहले अपने आपको जान ले, और सम्भलकर डटकर खड़ा हो जाय तो फिर उसको पुराने जन्मोंके किये पाप-कर्म्मोंके तिर्यग् योनियों में लेजानेवाले बुरे फल भी नीचे नहीं गिरा

सकते। क्योंकि वह आत्मज्ञानी अपने अंतःकरणमें बसी सब कर्मवासनाओंके ढेर (आशय) को ज्ञानकी चिनगारी लगा देता है। वह सब वासनाओंका झोपड़ा जल कर खाक हो जाता है। तब उसको नीच योनियों में आनेका भय भी नहीं रहता। वह निर्भय होकर जीवन्मुक्त होकर विचरता है। बड़ी बात यही है कि, अपनेको कैसे जाना जाय? आत्माका ज्ञान करनेके लिये किस कालेज या स्कूलमें भरती हुआ जाय? इसका स्पष्ट उत्तर यही है कि आत्मज्ञानी ब्रह्मवेत्ता ऋषियोंने सब संसारके हितके लिये जो मार्ग दिखाया है उसीपर चलकर आत्मा का ज्ञान किया जा सकता है। आत्म-ज्ञानका उपदेश करनेवाले वे ही ब्रह्मर्षि गुरु हैं। उनकी मनोहर वाणियां उपदेशमयी उपनिषदें ही नियत-निश्चित पाठ्य पुस्तकें हैं। उनके जाननेवाले विद्वान् लोग ही शिक्षक हैं। उन पुस्तकोंका निरन्तर स्वाध्याय, मनन, वाचन,-अनुवाचन करना ही उन वाणियोंका अनुशीलन है। भगवान् ही परम गुरु हैं। आत्मा शिष्य है। स्वयं शांत होकर शांत गुरुओंके पास जाय और उपनिषदोंका उपदेश ले। तभी परम सुख-शांतिका अनुभव होगा।

थोड़ा विचार कीजिये। शान्त होकर सब अन्य उच्छृङ्खल चित्त-वृत्तियोंको रोक कर एकान्तमें भगवान्का स्मरण करें और उपनिषदों के एक २ वाक्य पर विचार करें तो अन्तरात्मा में गुरु-भावसे हृदयकी पवित्र वेदीपर विराजमान सब गुरुओं के गुरु भगवान् ही शान्ताकार होकर अनाहत नादवृत्तिसे उन

आत्मज्ञानके मन्त्रोंका रहस्य स्पष्ट करते हुए प्रतीत होते हैं। इस अवस्थामें चित्त मग्न हो जाता है, सब बाह्य वृत्तियां अन्तर्मुख हो जाती हैं। हृदयकी ग्रन्थियां खुलने लगती हैं और तब सब हृदयमें जमे नाना प्रकारके संशय आपसे आप कटने लगते हैं। उस परमात्मा भगवान्‌का साक्षात्कार होता है, विशुद्ध आत्माकी महती शक्ति चराचरमें कर्ता भोक्ता रूपमें सहस्त्रधा होकर नाचती मालूम होती है। तब उस विशाल विराट् रूपका दर्शन होता है। तब शान्तहृदयोंसे यह वेदवाणियां भी प्रकट होती हैं।

"पुरुष एव इदं सर्वं यद्भूतं यच्च भाव्यम्
उतामृत त्वस्ये शानो यदन्ने नातिरोहति ।
सहस्त्र शीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्र पात्
सभूमिंग्यं सर्वतः स्तृत्वा अत्यतिष्ठद्दशांगुलम् ।"

यह सब पुरुष ही है जो यह भूत और भव्य है। वह अमृतत्व का ईशान (स्वामी) है जो अन्न द्वारा पुष्ट होता है। उसके हजारों आंखें और हजारों पैर हैं। वह सब उत्पन्न करनेवाली भूमियोंमें व्याप्त होकर दश अङ्गुलियों (इन्द्रियों) को अतिक्रमण करके बैठा है।

ये सब रहस्य शान्त अवस्थामें शान्त जीवनके शान्त अन्तःकरणमें शान्त संकल्पोंके रूपमें प्रकट होते हैं। उस समय अपना अन्तरात्मा स्वयं शान्त रूप होकर शिष्य रूपसे तर्क वितर्क किया करता है और अपना ही अन्तरात्मा शान्त गुरुके रूपमें स्वामी शांत होकर उन तर्क-वितर्कोंका समाधान किया करता है। इसी अवस्थामें निमग्न होकर ब्रह्मविद्याका अभ्यास करनेसे सच्ची शान्ति-

का लाभ होता है।

मेरी हृदयसे यही अभिलाषा है कि स्वामी 'शान्त' के प्रिय शिष्य 'शान्त' के प्रति कही हुई उपनिषदोंकी इस ज्ञान-कथाका स्वाध्याय करके सभी ज्ञान-प्रेमी लोग ब्रह्मविद्याका वास्तविक रस लेंगे और अपने जीवनको शांतिपूर्वक सुखमय बनाकर शान्तिपथमें विहार करेंगे।

दुर्गाभवन
२३ महेन्द्रनाथपाल लेन
बाबनगाछी सलकिया
कलकत्ता।

भवदीय,

'शान्त'

प्रवचन

स्वामी शान्त कहने लगे—'हे शान्त! ध्यान दो, देखो, उपनिषदें ऋषियोंके आश्रमोंमें पली हुई कामधेनुएँ हैं। इनका रस पान करना सब ऋषि-सन्तानोंके लिये गौरवका कार्य है। वह अधन्य है जिसने भारतभूमिमें उत्पन्न होकर भी इनके रसका स्वयं आस्वाद नहीं लिया। ये कामदोग्ध्री धेनुएँ अपनी ज्ञानमयी रसधाराका सदा वर्षण करती हैं। आवश्यकता है इन दिव्य माताओंके स्तन्य-पान करनेवाले शान्त बछड़ोंकी। बहुतसे साम्प्रदायिक लोग अपनी वैयक्तिक विचार-रज्जुओंसे इन धेनुओंको खींच-खींचकर अपने २ सिद्धान्त-पथपर ही चलाना चाहते हैं तथा अपने मठके अहातोंमें ही कैद कर लेना चाहते हैं। यह इनपर अत्याचार है। क्रियायोगी, ज्ञानयोगी, भक्तियोगी सभी बालक इनका स्तन्यपान करनेके अधि-कारी हैं। माताकी गोदमें बच्चा दूध चाहे खड़ा होकर पीये, चाहे लेटकर, तो भी बुरा नहीं, दूध तो अपना गुण दिखाये बिना रह नहीं सकता। इस कारण हे शान्त! इन उपनिषद्-धेनुओंका रस मानव-समाजमें जिसने भी पिया उसीको शान्ति मिली है, उसीके जीवन में बल आया है, उसीके सिद्धांत अटल हो गये हैं। सब तर्कोंके विष इस गोरसमें शांत होकर निर्वीर्य हो गये हैं। सब दार्शनिक कल्पनाओंकी रस्सियाँ इसके बलके सामने ढीली पड़ गयी हैं। सब अनीश्वरवादोंकी चेचहाटें इसकी गर्जनाके सामने शांत हो गयी हैं।

सब तरहके ईश्वरवाद भी इसके ब्रह्मवादके सामने ग्राम्य जँचते हैं। इसकी वह सुन्दरता, मधुरता, कमनीयता एक बार चख लेनेपर फिर नहीं भूलती। इन कामधेनुओंका रस पीनेपर आत्मा अमर हो जाती है, मानो रसायनसा पानकर वह सदाके लिये दिव्य हो जाती है। अधिक क्या, इतना ही पर्याप्त है कि उस मातृ-क्रोड़में बैठकर यह ऊहापोह केवल रसपानकी उत्सुकतासे बालक 'शांत' का सहज चापलमात्र है। हे शांत! शांत गुणग्राही गुणकी उपेक्षा न करेंगे।

स्वामी 'शान्त'

शान्तिका जीवन

—या—

ईश उपनिषद्

—पर—

शान्तका शान्तिसे मनन

सूत्रपात

मकर संक्रांति (१९७१ वि०) के अवसरपर स्वामी शांत तीर्थ-यात्रा करते हुए अन्य यात्रियोंके सङ्ग ही सङ्ग गङ्गासागरके सङ्गम-पर विराजमान श्रीकपिलाश्रममें जा पहुंचे। गङ्गाकी धवल धारा अपने पवित्र स्वच्छ सलिलकी मन्द मन्द तरङ्गोंसे, नील जलसे पूर्ण विशाल विस्तृत, नद-नदी-पति सागरमें ऐसे समा रही थी जैसे

योगीकी प्रभासे चमकनेवाली योगशिखामय चित्त-तरङ्गिणी प्रमुदित होकर ब्रह्मरन्ध्रमय हृदयाकाशमें समभावसे विराजमान आनन्दसागर नारायणमें समाया करती है।

स्वामी शांत यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने तटपर बिछी कोमल बालूपर अपना आसन जमा लिया और अन्तर्ध्यान होकर अपने प्रिय शिष्य शांतको गम्भीर मन्दस्वरसे स्मरण करके अपने आगे बैठा लिया एवं उसे अपनी विचार-तरङ्गोंमें तन्मय करके विचारवाणीसे यों कहने लगे, "हे शांत! तुम यही जप करो—

ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!!

ईश्वर ज्ञानस्वरूप, सब जीवोंका मालिक और प्रकृतिका भी मालिक है।

वह ईश्वर पूर्ण है। उसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं। यह सृष्टि भी पूर्ण है। इसकी व्यवस्थामें भी किसी प्रकारकी त्रुटि नहीं है। ऐसा पूर्ण संसार उस पूर्ण ईश्वरसे ही पैदा होता है। वह इसका आधार है। ईश्वर इस संसारमें व्यापक है।

उस ईश्वरसे इस संसारके उत्पन्न हो जानेपर भी वह ईश्वर पूर्ण ही शेष रह जाता है। जैसे मिट्टीमेंसे एक घड़े लायक मिट्टी निकाल लेनेपर शेष मिट्टी कुछ घट जाती है उस प्रकार उस ईश्वरमें न्यूनता नहीं आती, बल्कि वह ज्ञान-रूप है। अपनी ज्ञानकलासे चित्रकार जब कोई चित्र बनाता है तब उसकी कलामेंसे उस चित्रके योग्य कारीगरी या कलाके निकलने या विकास वा प्रादुर्भाव

अथवा प्रकट होनेपर भी उसकी चित्रकलामें कोई न्यूनता नहीं आती, प्रत्युत वह चित्रकार अपनी कलामें पूर्णका पूर्ण ही रहता है। उसी प्रकार ईश्वर भी इस जगत्की रचना अपनी ज्ञानशक्तिसे करता है। ऐसा करनेसे उसकी ज्ञानशक्तिकी पूर्णतामें कोई कमी नहीं आती, इसीसे वह ईश्वर पूर्ण है। उसमेंसे इस पूर्ण संसारके निकल आनेपर भी उसमें कोई न्यूनता नहीं आती। अतः हे शांत!

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह पूरा है, यह भी पूरा है। पूरेमेंसे पूरा निकल आता है। पूरेमेंसे पूरा लेकर भी पूरा ही बच जाता है।

'शांत' के हृदयमें यह एक कल्पनामय संवाद होने लगा:—

नास्तिक—यह गणितकला कैसी बतलाई? क्या १० मेंसे १० निकाल लेनेपर शून्य (०) नहीं बच जाता?

तत्वज्ञानी—हाँ भोले तार्किक! यह ईश्वरकी शक्तिका नमूना है। यह तुम्हारी रुपयोंकी थैलीकी गिनती नहीं। तुम्हारे रुपये अधूरे हैं, जड़ हैं। जड़ पदार्थोंका वही हिसाब है जो तुम कहते हो। चेतनमें वैसा नहीं होता।

नास्तिक—माता तो चेतन है, क्या पेटमेंसे बच्चा पैदा होनेपर माताका पेट छोटा नहीं हो जाता?

तत्वज्ञानी—हाँ हो जाता है। पर माताका पेट भी जड़ देहका

भाग है। कभी अकलमन्दकी अकल सलाह देनेपर घटा करती है ? नहीं।

नास्तिक—तो क्या यह जगत्की रचना ईश्वरकी खयाली सृष्टि है ?

तत्त्वज्ञानी—नहीं। अनन्त प्रकृतिसे बनाई गयी है और प्रभुने अपनी अकलसे बनाई है। क्या मिट्टीसे घड़ा बनानेपर कुम्हार की अकलमें या उसके कुम्हारपनेके कला-कौशलमें कभी कमी आ जाती है ? नहीं। उसी प्रकार प्रकृतिसे संसार की रचना करते हुए भी ज्ञानमय ब्रह्ममें कमी नहीं आती।

नास्तिक—संसारमें तो बहुतसी कमी हैं।

तत्त्वज्ञानी—कौनसी कमी है ?

नास्तिक—फिर इतनी हाय-हाय क्यों मची है ? कमी है तभी तो उसके लिये हाय २ है।

तत्त्वज्ञानी—यह जीवके ज्ञानमें कमी है। ब्रह्मके काममें कमी नहीं। अज्ञानी और अल्पज्ञानी जीव अपने तुच्छ कर्मों में फँसकर हाय-हाय करते हैं। जो तत्त्वको जान लेते हैं उनको तुम कभी हाय हाय करते न देखोगे। पर देखो, ईश्वरकी कर्मफलकी व्यवस्था कितनी पूरी है और शेष संसारके वैज्ञानिक नियम भी कितने पूरे हैं ? किसी सायन्सवालेसे पूछो कि विज्ञानके जो नियम इस संसारको गाँठे हुए हैं वे कितने पूरे हैं। याद रखो, जैसे भौतिक संसारके नियम पूरे २, ठीक २ हैं, उनमें तिलभर भी कमी नहीं, वैसे ही आत्मिक संसारके नियमोंमें भी कोई त्रुटि नहीं है।

नास्तिक—फिर यह शहतान और पाप कहाँसे आये ? क्या यह संसारकी न्यूनता नहीं ?

तत्वज्ञानी—ये अज्ञानके फल हैं। जिसने ईश्वरको पूर्ण नहीं जाना उसने ईश्वरको अधूरा समझकर अपनी अकलमें शहतान और पापको जगह दी। ईश्वरको ज्ञानमय पूर्ण ब्रह्म माननेवालेके विचारमें शहतान और पाप नहीं है। इसलिये वेद कहता है—वह 'अपापविद्ध' है। पाप उसको छू भी नहीं सका है। इसी कारण ईश्वरमें कोई दुःख नहीं। वह सुखस्वरूप आनन्दमय है। हे शांत! अब ऐसी भावना करो कि—

ओ३म्! ओ३म्!! ओ३म्!!!

'ओ३म् ईश्वरका पवित्र नाम है। वह मनमें शान्ति दे, वाणीमें शान्ति दे और कर्ममें शांति दे। आध्यात्मिक दुःखरोगादि हमें न सताएँ, आधिभौतिक दुःख हिंसक जन्तु, साँप, बिच्छू, सिंह आदि हमें न सताएँ और आधिभौतिक दुःख अर्थात् दैवी दुर्घटनाएँ, दुर्भिक्ष,गर्मी आदि कष्ट न सताएँ। बस यही शांतके हृदयमें शान्ति का सच्चा सञ्चार है।

शांतिके पूर्ण रूपसे देह, इन्द्रियों और मनमें व्यापजानेपर प्रिय शांत! अब ब्रह्मविद्याका मनन करो 'ईशोपनिषद्' ब्रह्मविद्याका मुख्य ग्रन्थ है। उसका प्रथम मन्त्र यह है—

(१)

ओ३म् ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्

शान्तने विचार किया कि 'इस लोकमें जो कुछ गतिमान् है सबमें ईश्वरका आभास है।' जड़ पदार्थ स्वयं नहीं चल सकता। फिर सूर्य, चन्द्र, तारे आदि क्यों चलते हैं? सर्वशक्तिमान् ईश्वर उनमें व्यापक है। वह उनको गति दे रहा है। वायु क्यों चलती है? ईश्वर उसमें रहकर उसमें गति देता है। सूर्य क्यों चमकता है? ईश्वर उसमें चमक देता है। छोटे छोटे कीट-पतङ्गोंसे लेकर ब्रह्माण्डके बड़ेसे बड़े पिण्डतकमें गति है, सबमें परमेश्वर नियम-रूपसे बैठा है। उनमें वह लॉ (Law) या वैज्ञानिक सिद्धान्त रूपसे व्यापक है और उनको चला रहा है। उनको वह कालकी राहपर चलाता है। क्योंकि वह चला रहा है, वह सबको नियममें गाँठे है, इसीलिये वह ईश है, सामर्थ्यवाला है, सर्वशक्तिमान् है।

सभी वस्तुएँ गतिमान् हैं। सब जड़ पदार्थोंमें कालकृत गति है, प्रत्येक वस्तु वर्तमानसे भूतकालमें जा रही है और प्रत्येक वस्तुमें स्थानकृतगति है, कोई वस्तु किसी स्थानपर भी सदाके लिये स्थिर नहीं। किसीकी एक जैसी दशा नहीं रहती। उपचय और अपचय होता ही है। सब पदार्थ नियममें बँधकर कलके पुर्जोंकी तरह अपने अपने स्थानपर गति कर रहे हैं। उनमें ईश्वर नियम-रूपसे बैठा है। शान्त कहने लगे—

जब सब उस मालिकका है, सबपर उसीका अधिकार है तब मैं

उसका सेवक होकर किसी वस्तुको कैसे भोग करूँ। मैं उसी मालिककी शरणमें जाकर पूछूँ, भगवन् ! जब सब जगह आपका ही अधिकार है तो मैं जीव जो आपका ही सेवक हूं, क्या भोग करूँ ? हृदयमें प्रकाश होता है।

"तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः".

वहँ मालिक देनेवाला है, बड़ा दानी है। वह जो तुझे देगा उससे तू अपनी पालना कर।

"मा गृधः कस्यस्विद् धनम् ॥"

'किसीके धनपर मत ललचा। किसीके धनपर लोभ मत कर। यह सब दुनिया उसी मालिककी है। उसकी बनाई हुई सृष्टिमें किसी पदार्थपर भी भोग-कामनाकी इच्छा मत कर। जो ईश्वरने तुझे दिया उससे अपनी रक्षा कर।

'भोगे रोगभयम्।' भोग करेगा तो तुझे नाना प्रकारके कष्ट सतावेंगे। इसलिये उनसे कष्ट न पाकर अपने आत्मा और देहकी रक्षा कर। हृदयमन्दिरमें शान्तने संवाद सुना कि—

दुःखी—हा ! मालिकने मुझे बड़ा अभाग्य समझा है ? मुझे कुछ नहीं दिया। दिया तो फूटा भाग्य दिया।

दीनदयालु—भाई इतने निराश मत होवो। यह सब मालिकका है। तुम्हें उसने क्या नहीं दिया ? वह चीज़ नहीं दी जिसे तुम सँभाल नहीं सकते। तुम्हीं बतलाओ जो तुम्हारे पास बहुत कुछ था वह कहाँ गया ?

दुःखी—सब हाथसे निकल गया।

दी० द०—कहाँ निकल गया ?

दुःखी—इस तृष्णाके व्यसनमें।

दीनदयालु—बस, तुम अपने मनको सँभाल न सके, मन मालिक ने दिया था। इन्द्रियोंको न सँभाल सके। इन्द्रियाँ मालिक ने दी थीं। फिर धन दिया वह भी सँभाल न सके। अब ईश्वरका क्या दोष? उसने सब कुछ दिया तुमने कुछ न सँभाला। अब फिर देखो ईश्वरने जो कुछ दिया उससे अपनी रक्षा करो। अपना नाश मत करो।

दुःखी—औरोंको इतना क्यों दिया? मुझे क्यों न दिया? मेरी तरफ़से क्या ईश्वरने हाथ खींच लिया? मुझे दुःख ही दुःख दिया!

दीनदयालु—वह उनके कर्मोंका फल है। उन्होंने अपने मन और इन्द्रियोंपर वश करके कमाया और उसे बुरे कामोंमें नहीं लगाया; इसी लिये उनके पास बचा है। जब वे भी उसे व्यर्थ गवाँ देते हैं तब तुम्हारी तरह हाथपर हाथ रखकर चिन्ता किया करते हैं। इसी चिन्तामें बड़े २ मालदार भी रातको सुखकी नींद नहीं सोते और जो व्यर्थ नहीं गवाते और अपनी पालनामें लगाते हैं वे सुखसे जीवन बिताते हैं। तुम अपना परिश्रम करो और सुखसे ईश्वरके दियेपर सन्तोष करो और अपने जीको मत दुखाओ; इसलिये हे शान्त!

(२)

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत् शतं समाः ॥

"अपने आयुके सौ वर्षों तक काम करते हुए जीना चाहो। निकम्मा जीवन मत बिताओ। उस ईश्वरका भजन करो। इन हाथों परोपकार करो, दान दो, लोक-सेवा करो। ये ही कर्म हैं। चोरी, जारी, हिंसा आदि कुकर्म, विकर्म और निषिद्ध कर्म हैं, उनका करना मना किया गया है, उनको पाप कहा है। वे दिलको, आत्माको और शरीरको आपत्तिमें डालते हैं, संकटमें फँसा देते हैं। उनके करनेसे मनमें भय, शंका और लज्जा लगती है। भले कामोंके करनेसे मनपर कोई दाग़ नहीं बैठता। सत्य बोलना, चोरी न करना, किसी प्राणीको कष्ट न पहुंचाना, अपनी इन्द्रियोंको वशमें करना, व्रतका पालन करना, अपने मनमें, देहमें और कर्ममें किसी प्रकारका मैल न रखना, मनमें उतावला न होकर सन्तोष करना, शरीरके सब कष्टोंको धैर्य्यसे सहन करना, विद्वानोंके बनाये हुए विचारपूर्ण ग्रन्थोंको पढ़ना, सब सुखोंको देनेवाले सर्वशक्तिमान् न्यायकारी भगवान्का भजन करना, ये सुकर्म हैं। इनको करनेसे चित्तमें पाप नहीं लगता। इसीलिये भगवान् वेदमें उपदेश करते हैं, हे शान्त!

एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥

"न अन्यथा इतः अस्ति" इससे दूसरा कोई तरीका भी तो जीवनके

सुखसे बितानेका नहीं है। ऐसे ही शुभ कर्म करनेसे सौ बरस तक सुखसे जीवन निभाया जा सकता है।

"एवं त्वयि नरे कर्म न लिप्यते"

इस प्रकार तुझ पुरुषपर कर्मका लेप नहीं लगेगा। बुरा काम जो दाग छोड़ जाता है वह भले काम करनेसे नहीं लगता। तुम्हारा काम अपना कर्तव्य पालन करना है। यही ड्यूटी है। यम, नियम, पालन करना जीवन भरका कर्तव्य है। जब पापका मनमें लेप लगता है, वह भारी हो जाता है और दुःखका कारण होता है। जब मनपर लेप नहीं लगता, वह हलका रहता है और सुखी रहता है। जैसे माता अपने बालकको दूध पिलाती है और उसका पायखाना भी साफ करती है, वह उसे अपना कर्तव्य समझ कर करती है। इसलिये वह पायखाना साफ करके भी बुरी नहीं कहाती। उसके मनपर उस कामका कोई लेप नहीं लगता, उसी प्रकार सभी काम जब कर्तव्य समझकर किये जाते हैं तब उनका मनपर कोई लेप नहीं लगता। हे शान्त! सुनो—

जो अपने कर्तव्यको कर्म समझकर नहीं करते वे लोभमें पड़ जाते हैं। वे किसीकी सेवा भी करेंगे तो लोभसे। परोपकार भी करेंगे तो स्वार्थसे। ऐसे मनुष्योंपर उनके कर्म करनेपर लोभ और स्वार्थका लेप चढ़ जाता है। उनकी चित्तकी कोठरीमें काम क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, ये छः शत्रु आकर छिप जाते हैं।

जब धन प्राप्त होता है तब परोपकार करनेका अवसर आता है उसी समय काम-तृष्णा उनके आत्मापर घात लगाकर उनका धन

छीन लेती है। वे जब अपने धनकी आयमें या स्वार्थकी साधनामें कोई बाधा आती देखते हैं तब उनको सन्तोष करनेका अवसर है पर उस समय उनकी आत्मापर क्रोध अपनी जहरीली छुरी चलाता है। वे पागल होकर लड़ने लगते हैं। जब भोजन द्वारा शरीर पालन करनेका अवसर होता है तब लोभ अपना मोहन जाल पसार कर उसके आत्माको धर घसीटता है। जब लोकसंग्रह करनेका अवसर होता है तब मोहका बन्धन उसकी मुश्कें कस लेता है। जब धन-सम्पत्ति पाकर विनय दर्शानेका अवसर होता है तब मदका ज्वर उसको तपाता है और वह उसी सरेसाममें छटपटाता है और गर्वके झोकोंसे उड़ने लगता है। जब परायी उन्नति देख कर उसकी प्रशंसा करनेका अवसर आता है तब मत्सर अपनी विषैली पुड़िया मनमें घोलता है वह उसीको खाकर जला करता है। कहिये,जब एक पुरुषपर एक दो डाकू आ पड़ते हैं तब कितनी कठिनता होती है। यहाँ छः डाकू उसके आत्मापर अपना छल, बल, कल चला रहे हैं तब उसकी क्या गति होगी।

हे शान्त! ये छहों ठग उसके अपने ही अन्तःकरणमें पलते हैं उनसे ही वह अपने आत्माका हनन कर लेता है। जैसे शोकान्धकारमें डूबकर पुरुष आत्महत्या कर लेता है उसी प्रकार मोहमें पड़कर पुरुष इन ठगोंके बहकानेमें फँसकर भी आत्महनन कर बैठता है। हे शांत!

(३)

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥

"आत्माका घात करनेवाले लोग मरकर ऐसे अन्धकारसे घिरे लोकोंमें जाते हैं जहाँ सूर्य्य भी नहीं है।" जो पुरुष नर-योनियोंमें आकर भी ज्ञान-मार्गपर न चलकर तामस कर्मों को करते हैं, काम, क्रोध, लोभ, मोह,मद, मात्सर्यमें फँसकर अपने आत्माके सात्विक बलका भी नाश कर लेते हैं उनको अगले जन्म अज्ञानकी योनियोंमें लेने पड़ते हैं। वहाँ उन्हें ज्ञानका सूर्य्य दिखाई नहीं देता। उनका ज्ञान लुप्त हो जाता है। स्थावर-योनि और पशुयोनियोंमें ज्ञान नहीं होता। काम, क्रोध आदि वृत्तियाँ ही इन योनियोंमें प्रबल होती हैं। उनमें कर्म, अकर्म, विकर्मका कुछ विचार नहीं। शान्तके हृदयमें संवाद सुनाई दिया—

तार्किक—आत्मा तो अजर अमर है। फिर आत्माका घात कोई कैसे करता है?

ब्रह्मवादी—सत्य है। आत्मा अजर, अमर है। वह कभी नहीं मरता,उसका घात कोई नहीं कर सकता। लोकमें आत्म-हत्या केवल एक तरहकी नहीं होती। कई तरहकी होती हैं। जो पुरुष संसारके कष्टसे पीड़ित होकर निराश हो जाते हैं, जिनका धैर्य नष्ट हो जाता है, वे अपने शरीरका घात कर लेते हैं। वे समझते हैं कि उनके शरीरके नष्ट

हो जानेपर फिर कष्ट पीड़ा अनुभव करनेवाला कोई न रहेगा। यह तो आत्महत्या आत्महत्या नहीं परन्तु देह-हत्या है। मकानके तोड़ देनेपर मकानका मालिक नहीं मर जाता। पिंजरा तोड़ देनेपर पक्षी नहीं मर जाता। वह दूसरे स्थानपर चला जाता है। यदिका शब्द 'आत्महत्या' उसको कहना है जिसमें आत्माके सौम्य गुणोंका घात हो आत्माके अपने स्वरूपका विनाश होता हो। राजस और तामस कामोंसे आत्माकी सौम्यता नष्ट हो जाती है। जिसका हृदय लोभके कारण क्रूर हो जाता है उसका दिल मर जाता है। उसमें आत्मा नहीं रहता। इसी प्रकार जो अधिक काममें फंस जाते हैं वे भी अधमरेके समान मरसे जाते हैं। उनकी लज्जा तथा विवेक नष्ट हो जाते हैं। यही आत्माके सौम्य गुण हैं। काम और क्रोधसे उनका नाश हो जाता है। इसी कारण कामोपहत पुरुष भी दीवाना हुआ फिरता है। उसका हृदय अपने वश नहीं रहता। कहनेका तात्पर्य यह है कि जो अपने शरीर, मन और इन्द्रियोंको अपने वशमें रखते हैं वही आत्माकी रक्षा करते हैं। उनका वशमें न रखना ही आत्माका नाश करना है।

आत्मा एक महारथी है। शरीर उसका रथ है मन उसका सारथि है। इन्द्रियाँ घोड़े हैं। यह जीवनक्षेत्र रणक्षेत्र है। इसमें प्रलोभनरूप असुरोंसे बड़ा भारी संग्राम है। सब विषय इन्द्रियरूप घोड़ोंके भागनेके लिये धोखेके मार्ग

हैं जिनमें घोड़ोंके पैर फिसल पड़ते हैं। यदि घोड़ोंको विषम-मार्गों में अन्धा होकर दौड़ने दें तो घोड़े भी मरते हैं और रथ भी टूट जाता है। यह भी महारथीकी मौत ही है। यदि सारथी मर जाय या उसको रास्ता न सूझे और घोड़े उसके काबूसे निकल जायें या वह महारथीकी आज्ञा न मानें तो भी वह आत्मारूप महारथी परास्त हो जाता है और मर जाता है। बस यही आत्माकी हत्या हैं। अविद्वान् लोग अज्ञानसे अपने आत्माकी उपेक्षा कर देते हैं और इन्द्रियों तथा मनको दुष्ट विषयोंमें डालकर आत्माका घात कर देते हैं। उसे पीड़ा पहुंचाते हैं। उसको नाना तिर्यग्योनियोंमें कष्ट भुगवाते हैं। यही आत्म-हत्या है। ऐसे अज्ञानी कामी, क्रोधी, लोभी, पापी पुरुष ही आत्म-हन् कहाते हैं। इसी दोषसे वे संसारमें भटकते रहते हैं।

तार्किक—ब्रह्मन्! यह उदाहरण तो बहुत अच्छा दिया, पर हमें तो शरीर, इन्द्रियों और मनके अतिरिक्त और किसी वस्तुका पता नहीं चलता। वह आत्मा कैसा है। क्या शरीर आत्मा नहीं। शरीर ही तो आत्मा है उसको मारनेसे "मैं मरा मैं मरा" चिल्लाते हैं। इन्द्रियाँ शरीरका भाग हैं। मन सोचता है, स्वप्न देखता है, पर यह आत्मा कौन वस्तु है।

ब्रह्मवादी—वह आत्मा बहुत गूढ़ वस्तु है। उसको जाननेके लिये

तप और योगाभ्यासकी आवश्यकता है। उस आत्माका शास्त्रोंसे श्रवण करो, अपनी विवेक बुद्धिसे मनन करो और आन्तरिक ज्ञानसे उसपर गम्भीर विचार (निदिध्यासन) करो तब तुमको आत्माका साक्षात्कार हो जायगा। उसको समझानेके लिये ऋषि लोग एक पहेली कहते हैं। सुनो शान्त !

एक पाँव नहिं चला, अचल, तब मनसे भी बाज़ी जीती।
देवोंसे जब हुआ मैच तब देवोंसे बाज़ी जीती॥
वह सबसे पहले पहुँचा था, चला एक भी पाँव न था।
सब दौड़े, सबसे आगे था, तिसमें पवन हिलोरे था॥"

वेद उस आत्माका स्वरूप कहते हैं :—

(४)

अनेजदेकं मनसो जवीयो,
नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्,
तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति॥

वह ब्रह्म सर्वव्यापक है वह किसी एक स्थानसे हिलकर दूसरे स्थानपर नहीं जाता है। इसीलिये वह चलता नहीं है। परन्तु उसकी गति, उसका वेग मनसे भी अधिक है। मनकी गति संसारमें सबसे अधिक समझी जाती है। अभी तो मन कलकत्ते में लगा है। अभी

एक सैकण्डमें वह लण्डनमें बैठे प्रियतमके विचारमें लग जाता है। परन्तु इस गतिसे भी अधिक तेज़ गति उस ब्रह्मकी है।

जब वह कहीं चलता नहीं फिर इतनी अधिक वेगवती गति कैसे आ गयी? सुनो शान्त! इस बातको समझनेके लिये एक दृष्टान्त भी सुनो—

सात पुरुषोंमें वायदा हुआ कि जो लाहोरके हृदयनाथके द्वारे सबसे प्रथम पहुंचे, वही पारितोषिक पावेगा। उनमें सातवें पुरुष का नाम ब्रह्मदेव था। वे लाहोरके रहनेवाले थे, परन्तु प्रायः वह लाहोर रहते न थे। वे अपने मित्रोंके घरोंपर अक्सर डेरा डाले रहा करते थे। उनके ६ मित्र थे मणिराम, कमलनयन, शुकनास, मृदुरोमा, राजा कर्ण और रसेश्वरीप्रसाद। और भी उनके अच्छे अच्छे परिचित मित्र थे वे उनके पास भी कभी-कभी स्नेहवश चले आया करते थे। उनके नाम भी सुन लीजिये, जैसे कर्मचन्द्र, गुप्तेश्वरीचन्द्र, लाला गुलझारीमल, श्रीवागीश्वरीदत्त पाण्डेय और एक चरणदासजी। सो इन सबमें मणिराम लाहोरके बहुत समीप थे। उन्होंने सोचा, यह इनाम हमको मिलेगा, हम बहुत जल्दी रास्ता तय कर लेंगे, हमारे पास मोटरकार भी है। और बेचारे तो कोई रेलपर, कोई बैलगाड़ीपर, कोई घोड़ागाड़ीपर आयेंगे और कोई न आकर तार खड़कायेंगे, या किसीका लिफ़ाफ़ा तीन दिन बाद पहुंचेगा। अस्तु, ब्रह्मदेवसे बाज़ी मारनेकी सबने सोच रखी थी। मणिराम मोटरपर सवार हुए और लाहोर पहुंचे तो जिस हृदयनाथके द्वारेमें पहुंचनेको ताकीद थी वहां पण्डित ब्रह्मदेव पहलेसे

ही बैठे गायत्रीका जप कर रहे थे। सो मणिराम हँसकर बोले तुम हमसे भी तेज़ निकले। तुम तो हमसे पहलेसे ही आकर यहाँ बैठे हो।

यह तो दृष्टान्त है। हे शान्त! इसे दार्ष्टान्तमें घटाओ। हृदयनाथका द्वारा हरेक पुरुषका हृदयमन्दिर है। यह देह सम्पूर्ण नौ दरवाजोंवाला लाहोरका नगर है। ब्रह्मदेव आत्मा है जो इस शरीरमें हृदयमें ही रहते हैं। उनके छः मित्रोंमें पण्डित कमलनयन यह नयन ही हैं, मणिराम यह मन है जो सरकारी हरकारेसे भी तेज है, मन्त्री शुकनास यह नाक है, सन्त मृदुरोमा यह त्वचा है। राजा कर्ण कान हैं, रसेश्वरी प्रसाद जिह्वा है। इस प्रकार और भी परिचित मित्र हैं जैसे लाला कर्मचन्द्र खत्री ये हाथ हैं, गुप्तेश्वरी-प्रसाद- उपस्थ भाग है, लाला गुलझारीमल गुदा इन्द्रिय है, श्री वागीश्वरी दत पाण्डेय यह तर्क करनेवाली वाणी है। एक भगत चरणदास दास चरण ही हैं। इन सबमें मणीराम मन ही और सबकी अपेक्षा हृदयके समीप हैं। वे ही सबसे तेज़ इच्छाशक्ति वेदना-रूप मोटरकारको नर्वस् या ज्ञानतन्तुओंके मार्गपर दौड़ाते हुए सबसे पहले हृदयमें पहुंचे। देखा कि ब्रह्मदेव आत्महृदयमें पहलेही पहुंचकर बैठे २ गायत्री जप कर रहे थे। इसी लिये कहा—

"आनेजदेकं मनसो जवीयः"

वह आत्मा और ब्रह्म स्वयं कभी नहीं चलता और मनसे भी अधिक वेगवान् हैं और इन्द्रियाँ भी उसतक नहीं पहुंच सकतीं।

"नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्"

देव लोग भी उसको नहीं पकड़ सके, वह तो वहां पहले ही ज्ञानवान होकर बैठा है।

"तद्धावतो ऽन्यानत्येति तिष्ठत्"।

इन्द्रिय आदि जो अपने विषयोंकी तरफ ज्ञान करनेके लिये दौड़ता है आत्मा उन सबके क्षेत्रसे पार होकर उनसे आगे बढ़ जाता है। इन्द्रियाँ उस आत्मा तक नहीं पहुंच सकतीं।

"तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति"

मातरिश्वा प्राणवायु उस आत्माका आश्रय लेकर ही शरीरकी सब चेष्टाएं किया करता है।

यह तो आत्माका अध्यात्म वर्णन है। परन्तु विराट ब्रह्माण्डमें यह सब वर्णन उस परमात्मापर भी लगता है। पृथ्वी तेज वायु और अन्तरिक्ष ये सब शरीरमें भी विद्यमान है और इनहींकी सूक्ष्म मात्रा शरीरमें इन्द्रियरूप होकर वेठी हैं।

वे जैसे आत्माको नहीं देख सकती क्योंकि वे बहिर्मुख हैं, वे बाहरकी ओर देख सकती हैं, उसी प्रकार इस विशाल ब्रह्माण्डमें ये पाँचों भूत देव कहाते हैं। वे उस परमात्माके चेतन तथा ज्ञानमय, आनन्दमय स्वरूपसे बहिर्मुख हैं, वे उसतक नहीं पहुंच सकते, वे उसीकी शक्तिसे प्रेरित होते हैं। वह सब भूतोंसे भी परे हैं। उसकी शक्तिसे सीमित होकर यह विशाल वायु (मातरिश्वा) अपने बलके सब कार्य करती है।

(५)

हे शान्त! इसी सचाईको वेदमन्त्रमें दूसरे रूपसे भी कहते हैं—

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तदु अन्तिके ॥
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥

" चला न चला, पास न दूर, सबके भीतर बाहर नूर "

वह ज्ञानस्वरूप परमात्मा सर्वव्यापक होनेसे चलता नहीं। वह ज्ञानीके हृदयमें प्रकाशित होता है। वही उसका चलना है।

वह घटघटका वासी सब हृदयोंमें समाया है।
अज्ञानी हृदयोंमें जाकर मूढ़ोंसे भग आया है॥
ज्ञानीका वह सखा, रहे संग, करे हृदयमें वास।
यों घटघटके बाहर, भीतर, रहे दूर नहीं, पास॥

हे शान्त! वह अज्ञानी हृदयोंसे दूर है। पापी लोग उसको सातवें आसमानमें बैठा हुआ समझ कर इस पृथ्वीपर बहुत पाप करते हैं और मनुष्य जन्मको व्यर्थ गवा देते हैं। वे यह भी नहीं जानते कि वह उनके हृदयमें ऐसे बैठा है जैसे कलाघरमें कला। वह सबके भीतर भी है और बाहर भी है। कौनसा ऐसा स्थान है जहाँ उस ईश्वरकी रचनाका चमत्कार नहीं।

स्वामी शान्त बोल उठे—'ऐ गर्वी पुरुष! कह तू क्या एक बाल भी बना सकता है? और तुझे अपने नाड़ियोंकी भी खबर है? उस ईश्वरने अपने अपूर्व कौशलसे इस संसारके एक छोटेसे छोटे परमाणु तकमें कितना चमत्कार दिखाया है। जिसे देखकर बड़े २ वैज्ञानिक हैरान हैं। उन्हें इस संसारको रचना पूरी समझ भी नहीं आती, पर तू सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी सर्व-शक्तिमान् प्रभुको भूल जाता है। वह ईश्वर तेरे मूढ़ हृदयकी

पहुंचसे बहुत दूर हो जाता है। पर जब तू उसका ध्यान करता है स्मरण करता है तब वह तेरे हृदयमें विराजकर तुझे अपना लेता है, तब वह तेरे अत्यंत अधिक समीप हो जाता है। बस जान ले कि वह ईश्वर प्रभु सब वस्तुओंके भीतर भी है और बाहर भी है। वह सर्वव्यापक है।

शांतने अपने हृदय-मन्दिरमें जब हरिका स्मरण किया तब हृदय पवित्र हो गया। सब देहमें उस आत्माकी अलौकिक रचना देखी, तब सब देह उस ईश्वर प्रभुकी रचना ही जंची और उसमें कोई दोष दिखाई न दिया। तब उसे अहङ्कार हो गया कि मैं तो हरिका उपासक, पवित्र हृदय और पवित्र देहवाला हूं। पर ये अज्ञानी लोग जो प्रभुको नहीं जानते और न उसका स्मरण करते हैं, बड़े अपवित्र हैं। इसी भावसे शांतके हृदयमें भी और देहधारियोंके प्रति घृणा उत्पन्न होने लगी। वह अपनेको ब्राह्मणका देह और दूसरेको शूद्रका देह समझने लगा, अपनेको ऊंचा और दूसरेको नीचा समझने लगा। परन्तु यह भी उसका अज्ञान था।

भगवान् वेदमें कहते हैं—हे शान्त!

[६]

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥

जो पुरुष सब प्राणियोंको आत्मामें देखता है और जो सब भूतोंमें आत्माको देखता है उसको फिर किसीसे घृणा नहीं होती।

हे शान्ति! पहले पुरुष अपने आत्माको देखे, अपने देहको देखे, वह स्वयं एक प्राणी है,उसे सुख दुःख होता है। उसका शरीर है, उसमें हड्डी मांस चर्म लगा है। वह काम करता है, अपने कर्मोंके फल शरीरोंसे भोगता है। पहले अपनेको इस प्रकार देखकर फिर और प्राणियोंमें क्या स्थावर और क्या जङ्गम, सभीमें इसी प्रकार देखे कि ये भी प्राणधारी देह हैं,ये आत्माके आधारपर बने हैं। यदि इनमें भोक्ता आत्मा न होता तो ये देह न बनते। ये सब स्थावर और जंगम शरीर आत्मामें ही ओत प्रोत हैं। इस प्रकार सब प्राणियोंको आत्मामें गुंथा हुआ देखे। पहले अपना रूप देखकर फिर वैसा ही प्राणियोंमें देखना अनुदर्शन कहाता है। इसी प्रकार सब प्राणियोंमें देखे कि उनमें भी आत्मा है। वही आत्मा चैतन्य है वही इन शरीरोंसे अपने कर्मफल भोग रहा है। उस आत्माके ये देह फल भोगनेके साधन हैं। इस प्रकार देख लेनेपर आत्मज्ञानी-को सब अपने भाईके समान जान पड़ते हैं। जैसे भाईसे प्रेम होता है, उससे घृणा नहीं होती, उसी प्रकार उसे सब प्राणी भाई जान पड़ते हैं। जो कमजोर प्राणी हैं उनपर उसे वैसेही दया आती हैजैसे अपने छोटे भाईपर आती है। जैसे हरेक मनुष्य छोटे भाईको रोता तड़पता देखकर उसके दुःखका कारण पूछता है और उनका दुःख दूर करता है उसी प्रकार आत्म-ज्ञानी भी इन प्राणियोंको कष्टमें पड़ा देखकर उनके साथ सहानुभूति करता है, उनके दुखमें दुःख मानता और सुखमें प्रसन्न होता है,उनपर दया करता है। जैसे हरेक चाहता हैं कि मेरे देहको कोई न काटे, न खाये, वैसे वह भी किसी

प्राणिको न काटता और न खाना चाहता है। जैसे दो भाइयोंको लड़ते हुए देखकर उनको शान्त कराकर फैसला करा देनेकी इच्छा होती है उसी प्रकार आत्मज्ञानीके हृदयमें शेष प्राणियोंको भी आपसमें समझा बुझाकर उनमें शान्ति उत्पन्न कराने और फैसला करानेकी इच्छा होती है। इसी कारण ऋषियोंके आश्रमोंमें हरिण और सिंह भी प्रेमसे एक वर्तनमें खाना खाते और पानी पीते हैं। वही ब्रह्मज्ञानी जब सर्वज्ञ आत्माका स्वरूप जान लेते हैं तब उनको सब एक जैसा दीखता है। उन्हें किसीसे न पक्षपात और न द्वेष होता है। किसीके वियुक्त हो जानेपर उन्हें मोह नहीं होता और उनको न किसी प्रकारका शोक ही सताता है। इसीसे वेद कहता है शान्त !

(७)

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मैवाऽभूद् विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः ॥

जो सब प्राणियोंको 'आत्मा है' 'आत्मा है' 'आत्मा है' इस प्रकार जान लेता है तब वहां सबको एक दृष्टिसे अपने समान देखने वालेको कौनसा शोक और कौनसा मोह रह जायगा ?

प्रिय शान्त ! यहां उपनिषत्कारोंकी यह शैली है कि वे आत्माका प्रतिपादन करते हुए आत्मा शब्दसे आत्मा और परमात्मा दोनोंका समान रूपसे वर्णन किया करते हैं। जो एकको जान लेता है वह दूसरेको भी जान लेता है। विद्वान जो एकको नहीं जानता है वह

दूसरेको भी नहीं जान पाता। जैसे विना द्वारमें प्रवेश किये मकानमें घुसा नहीं जाता है। जो मकानमें घुस जाता है वह द्वारमें भी जाता ही है। उसी प्रकार अपने आत्माके विमल हो जानेपर उस परमात्माका स्वरूप भी देखता है। जो अपने आत्माको नहीं जानता वह परमात्माको क्या जानेगा। जो दूरका अदृश्य तारा देखना चाहता है उसे पहले अपना दूरवीक्षण यन्त्र अच्छी प्रकार देखना होगा। उसमें मलिनता या दोष-विगाड़ रहनेपर तारा भी नहीं दीखेगा और जिसने उसमें तारा देखा उसने अपने दूरवीक्षणको भी ठीक ठीक जाँच लिया है।

(८)

अब तुम परब्रह्मका किस प्रकार ध्यान करें, अपने परमात्माको किस रूपका समझें? सुनो शांत! इष्ट देवके रूपोंमें बहुत विवाद है। कोई अपने इष्ट देवको नीला, कोई काला, कोई लाल, कोई भस्मके रँगका, कोई श्वेत, कोई पीला, कोई सातवें आसमानपर बैठा हुआ, एक देशी और कोई मनुष्य शरीरमें आया हुआ मानते हैं, कोई ईश्वरको न मानकर पुरुषको ही ईश्वर मानते हैं। इतने विवादोंमें उपनिषद्का ब्रह्म फँसा है जिसका आश्रय लेनेसे सब प्रकारके कष्ट, मोह, शोक और कर्म-बन्धनोंसे मुक्ति मिल सकती है। वही अगले मन्त्रमें वेद बतलाता है। हे शाँत!

सपर्यगात् शुक्रमकायमव्रण-

स्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभू-
र्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः
समाभ्यः ॥

वह परमात्मा किसी एक स्थानपर नहीं बैठा है, वह सर्वत्र व्यापक है। वह सब स्थानोंपर पहुंचा हुआ है। उसका नीला और लाल, पीला, काला आदि कोई रङ्ग नहीं। वह 'शुक्र' है। वह ज्योतिर्मय है, तेजःस्वरूप है, वह प्रकाशस्वरूप है, वह ज्ञानमय है, वह प्रकाशका भण्डार है। उसका कोई शरीर या काय नहीं है। काय देहको कहते हैं। वह भौतिक अवयव जुड़ २ कर तैय्यार होता है। उस ईश्वरका ऐसा कोई शरीर नहीं, जो भौतिक अवयव मिट्टी, पत्थर, सोना, चाँदी, ताम्बा आदि पदार्थोंसे घड़ २ तैय्यार किया जाय और न उसका ऐसा देह है, जिसमें हड्डी, माँस, चाम, लहू, नाड़ियाँ आदि ही लगी हैं। उसका देह ही नहीं है। वह अकाय है। इसी कारण उसके कोई घाव भी नहीं लगता। उसके चोट भी नहीं लगती। वह अव्रण है। उसमें कोई कमी नहीं होती। वह पूर्ण है उसके विरोधमें खड़ा होकर कोई उस परमब्रह्म प्रभुका गला भी नहीं काट सकता और न कोई और अंग ही काट सकता है; क्योंकि उसके न नाड़ियाँ हैं, न नसें हैं, न गलेकी धमनियां हैं। वह अस्नाविर अर्थात् स्नायु आदि से भी रहित है। उसमें किसी तरह का मल नहीं। वह सबका पवित्र करनेवाला स्वयं शुद्ध है। उसके दिलमें भी कोई पाप नहीं। उसका हृदय पवित्र, उदार है। उसमें

पाप लग नहीं सकता। ईश्वर किसीका अहित नहीं चाहता। वह मूर्ख नहीं, जो योंही मुसलमानों और ईसाइयोंके अल्लाह और गॉड की तरह किन्हींको सदाका नरक और किन्हींको स्वर्ग दे। परन्तु वह कवि है। वह दिलकी तह तोड़कर भी मनुष्यके सब गुप्त भेदोंको जानता है। वह क्रान्तदर्शी है, वह सृष्टिका कर्ता, ज्ञानका भण्डार है, वह सर्वज्ञ है। उसने इस संसारको बड़ी अकल या बुद्धिमत्तासे बनाया है, जिसे देखकर बड़े २ विद्वानोंके दिमाग घूम जाते हैं। वह उन सबसे बड़ा अकलमन्द हिकमत वाला है। वह मनीषी है। वह सबके मनों तकको प्रेरणा करता है। वह सब पदार्थोंपर शक्तिमान् है। सब पदार्थ उसकी सामर्थ्यकी सीमामें हैं। वह परिभू है। उसने अपनी सामर्थ्यसे ही सब पदार्थोंको ठीक २ प्रकारसे बनाया है। पहले सब अव्यक्त और अव्याकृत रूपमें था। परब्रह्म परमात्माने अपनी शक्तिसे सब सूर्य्य, चन्द्र, नक्षत्र आदिको जिस प्रकार बनाना चाहिये था, उसी प्रकार बनाया है। उसकी कृतिमें, उसकी कुदरतमें, किसी प्रकारकी क्षति नहीं। साथ ही उसने इस संसारको अव्याकृत रूपसे व्याकृत करके उसकी सब बागडोर तथा संचालनका कारोबार अपनेहीमें धारण किया है। यह आजसे नहीं, बल्कि अनन्त वर्षोंसे ऐसा करता चला आया है और अनन्त कालतक ऐसा ही करता भी जावेगा।

(६)

Acc. 12724

हे शान्त! मनुष्यका आत्मा चार खूंटियोंसे बँधा है, विद्या, अविद्या और सम्भव तथा विनाश। वह चाहता है कि, मैं अमुक वस्तु जान लूं, वह चाहता है कि, मैं अमुक पदार्थ पा लूं, वह चाहता है

कि, मैं अमुक लोकमें जन्म लूं, वह चाहता हैकि मैं अमुक अवस्थामें सदाके लिये मग्न हो जाऊँ। जीवन या आत्माकी किसी लोकमें स्थिति भी एक पक्षीके समान है, जिसका मुख सम्भव है, पुच्छ विनाश है उसका एक पंख विद्या है दूसरा पँख अविद्या है। जो जीव केवल विद्याके पक्षसे ही उड़कर सब मार्ग काटना चाहें और अविद्याके पक्ष या कर्म-पक्षसे सहायता लें वे भी बड़े अन्धकारमें डूबते हैं और जो कर्महीके बलपर सब बन्धनोंसे मुक्त होना चाहें, वे भी गहरी भूलमें हैं। क्यों? एक दृष्टान्त और सुनिये विद्या या ब्रह्मज्ञान एक बीज है जिससे निःश्रेयसरूप कल्पतरु उत्पन्न होता है या उस बीजसे मुक्ति-रूप कल्पलता उत्पन्न होती है। आत्मा स्वयं किसान है। चित्तरूप भूमि है। फल देनेवाला भगवान् है। यदि वह कर्म न करे और कर्म-सामर्थ्यसे चित्त-भूमिमें बिखरे काम, क्रोध आदि कांटेदारी झाड़ी साफ नहीं करेगा तो ब्रह्मज्ञानरूप बीज उसमें पड़कर भी नष्ट हो जायगा। वह उसको अशुद्ध असंस्मृत भूमि में फेंककर पछतावेगा। यदि वह आत्मा किसान परिश्रमी है, उसने बहुत श्रमसे तप, जप, ब्रह्मचर्य्य आदिसे चित्तको साफ कर लिया, पर उसके पास ब्रह्मज्ञानका सुन्दर बीज नहीं तो, काल-धर्म से साफकी हुई भूमि फिर उन्हीं कांटोंसे घिर जायगी. और जीव फिर अपनी मूर्खता और दरिद्रतापर माथा पीटेगा। परन्तु क्या कर्मका उपासक श्रमी साधक ब्रह्मज्ञानका अनन्त फल न पावेगा तो न सही, तो भी काम्य बीजका अन्तिम फल स्वर्गादि तो पावेगा ही; परन्तु केवल ज्ञानके पीछे पागल हुआ पुरुष अपने चित्तको स्वच्छ

करनेका श्रम न करेगा, तब उसका सब ज्ञान भी काम क्रोध आदि काँटोंमें पड़कर सदाके लिये दूषित हो जायगा। यह बहुत अधिक शोकका कारण होगा। वह अधिक अंधकारमें चला जायगा। इसी कारण उपनिषद् कहती है, हे शांत!

अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्या मुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

जो अविद्या अर्थात् काम्य फलोंकी लिप्सासे यज्ञ आदि कर्म-कांडमें फँस जाते हैं वे अनित्य फल न पाकर निराश रहते हैं, उन्हें भी शोक रूप तम आकर घेर लेता है। क्योंकि उन्होंने जप, तप, अनुष्ठान आदि करके चित्तभूमिको साफ तो किया पर आत्मतत्वज्ञानका बीज न बोकर उसमें कामना रूप विष बेल ही बोली। जैसे हल किये क्षेत्रमें अन्न न बोनेसे जंगली घास और काँटेदार झाड़ियां ही बहुत घनी उग आती हैं उसी प्रकार उस चित्तमें काम्य कर्म करनेके बाद विषय-वासना और भी दृढ़ हो जाती हैं। जैसे राजा पुरूरवाने अपने तप और यज्ञके बलसे स्वर्गलोक तो पा लिया। पर वहाँ ब्रह्म बीज या तत्व-ज्ञानका बीज न होने से स्वर्गमय भोग अर्थात् अनित्य भोगोंने फिर जड़ जमा ली वह उर्वशीरूप मयामयी विषवल्लरी से लिपटकर गिर पड़ा। परन्तु वह अनित्य भोग था। उसके समाप्त हो जानेपर वह फिर शोकसे भरकर जंगलमें भटकता फिरा। उसके चित्तमें कामतरुने जड़ पकड़ी थी। यह अविद्याकी उपासनाका फल है। इसी प्रकार नहुषको

इन्द्राणीके लोभने और अहंकारने वश किया, वह अजगर होकर स्वर्गसे गिर गया। फलतः तात्पर्य यह है कि जिसके मनकी वासना स्वर्ग लोकके भोगमें प्रबल होती है वह फिर उस भोगकी समाप्तिपर उसी वासनासे जकड़ा हुआ अधोयोनियोंमें जाता है। जो लोग अपनी चित्तकी भूमिको साफ नहीं कर लेते जिनके अन्तःकरणमें काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अन्तः शत्रु ज्योंके त्यों बने रहते हैं, जिनका यम नियम प्राणायाम आसन आदि साधनोंसे अभी इन्द्रिय जय भी नहीं हुआ हैं, वे अपना तत्व-ज्ञान रूप बीज हृदयमें रखकर उसको मुक्ति-लतामें फला फूला नहीं देख सकते। या जैसे दर्पणमें मुख देखनेके लिये दर्पणका साफ करना और प्रकाशका होना दोनों आवश्यक हैं, केवल साफ करनेसे भी विना प्रकाशके मुख नहीं दीखता और प्रकाश होनेपर दर्पणको रगड़ धोकर साफ किये विना भी मुख नहीं दीखता उसी प्रकार विना कर्माभ्यासके अन्तः-करण साफ नहीं होता उसमें ब्रह्मका स्वरूप प्रतिबिम्बित नहीं होता और विना-ब्रह्म-ज्ञानके शुद्ध अन्तःकरणमें भी आनन्द प्रति-बिम्बित नहीं होता। उनका सब ज्ञान उनके सदाचारके कारण नष्ट रहता है। जैसे वानरके हाथमें मणिकी दुर्दशा होती हैं ऐसे ही अजितेंद्रियके हाथमें ज्ञानकी भी दुर्दशा होती है। जैसे चन्दनसे लदा हुआ गधा हो वैसे ही तत्वज्ञानके बोझेसे वह विषय-व्यसनी भी लदा रहता है। अमृतका प्याला भरा हैं पर वह उसका आप उपभोग नहीं कर सकता। वह भी पछताया करता हैं। इसीलिये कहते हैं कि जो केवल तत्वज्ञान करनेमें ही लगते हैं और कर्म

द्वारा चित्तको सधाना नहीं करना चाहते वे उससे भी अधिक निराश हो जाते हैं। इस लिये हे शान्त !

(१०)

अन्यदेवाहुर्विद्यया अन्यदाहुरविद्यया ।
इतिशुश्रुम धीराणां येनस्तद्व्याचचक्षिरे ॥

देखो ! विद्याका फल और है और अविद्या अर्थात् कर्मका फल दूसरा है। धीर विद्वान् लोग जो इस बातको बहुत व्याख्या करते हैं उन्होंके मुखसे यह सुना जाता है। फलतः यह समझना कि जो मार्ग तत्वज्ञानीको मिलता है वही कर्मकाण्डीको भी, यह ठीक नहीं। दोनोंके फलोंमें भेद है ऐसा ही सुनते हैं कि—

(११)

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेद उभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्यया अमृतमश्नुते ॥

जो पुरुष विद्या और अविद्या, ज्ञान और कर्म दोनोंको खूब अच्छी तरह समझता है वह कर्माभ्यासके बलसे मृत्युको वशकर लेता और विद्याके बलसे अमृतका भोग करता हैं।

हे शान्त ! यम और नियमसे अभ्यासी अपने चित्तको सन्तोषी बना लेता है, अहिंसाके अभ्याससे वह अपनी हिंसावृत्ति पर वश कर लेता है। किसीको कष्ट नहीं देता, सब प्राणी भी उससे वैर

त्याग देते हैं। फलतः प्राणियोंसे जो उसको मरनेका भय लगता है वह अहिंसाके अभ्याससे टूट जाता है। सत्यके बलसे सब झूठ असत्य भाषण, असत्य मनन, और असत्य कर्म्म तीनोंपर विजय कर लेता है। फलतः झूठ बोलने, झूठ सोचने और झूठ काम पाखण्ड करनेपर, अपने पकड़े जाने, कलई खुल जाने और बादमें सर्वसाधारण या राजाके भयसे जो उसपर कष्ट होने सम्भव हैं, जो उसकी मारल डेथ या अकीर्ति-रूप मृत्यु ही है। वह सत्यके बलपर उनपर विजय पाता है। वह अस्तेयका अभ्यास करता है वह किसीको वस्तु चुराता नहीं है। दूसरेकी वस्तु चुरा लेनेपर राजा या समाजका दण्ड-भय लगा रहता है वही मृत्यु का भय है। अस्तेयका अभ्यासी उसपर भी वश कर लेता है तो ब्रह्मचर्यका पालन करता है। अपनी उपस्थ इन्द्रियोंको वश कर लेता है, विषय-लम्पटता उसे त्याग देती है। वह भोगोंमें छिपेसे छिपे रोगोंका भय, और परदारा-गमन आदि दुष्कर्मोंसे उत्पन्न होने-वाले कलह और दण्ड-भयसे भी मुक्त हो जाता है। अपरिग्रहसे वह सब वस्तुओंसे ममता त्याग देता है। कोई वस्तु उसको बन्ध-नमें नहीं बाँध सकती। जैसे धनके जोड़ रखनेपर चोरका भय है, सो वह भय भी निष्परिग्रहको नहीं सताता। शौचका नियम पालन करनेसे मैला न रहनेसे आने वाले रोगोंका भय पास नहीं आता है। वाणीके शौच होनेसे, वाणीके पवित्र होनेसे, कलहका भय शान्त हो जाता है। सन्तोष करनेसे हृदयको बड़ा धैर्य होता है। उतावलेपन या तृष्णासे वह किसी छल-छद्ममें नहीं फँसता। विवेक,

तपके अभ्याससे वह गर्मी, सर्दी और शरीरके अन्य प्रलोभनों-पर वश कर लेता है। उसे उनका भय नहीं रहता है। नित्य स्वाध्याय करनेसे उसके हृदयकी मूर्खताका नाश होता है। विवेक-का दीपक जगता है, परलोक और इस लोकका भय शांत हो जाता है। ईश्वर-प्रणिधानसे अपने अकेले आत्माको एक बड़ा भारी सहायक मिल जाता है। बड़ेसे बड़े कष्ट भी ईश्वरकी सहा-यतासे सरल हो जाते हैं। सब भयोंमें ईश्वर उसकी रक्षा करता हुआ प्रतीत होता है, हृदयकी सब निर्बलता निकल जाती है। यह तो यम और नियमका अभ्यास है। इसके बाद प्राणा-यामसे शरीरके सब आन्तरिक रोग नष्ट हो जाते हैं और वह दिव्य बलोंसे सम्पन्न हो जाता है। वह सब प्रकारकी आपत्तियोंपर वश पा लेता है।

हे शान्त! जो इन साधनोंको इस प्रकार अभ्यास नहीं करते उनके लिये यज्ञ, दान और तपका क्रम रखा है। जो निष्काम भावसे इस संसारकी मायासे ममता नहीं छोड़ते वे परलोकमें दिव्य लोकोंकी कामना करके यहाँ यज्ञ-दक्षिणाके रूपमें दान करते हैं,धर्मके नामपर त्याग करते हैं, ईश्वरके नामपर दान करते हैं, कीर्तिके नामपर मानके लिये त्याग करते हैं। जिनका प्राणोंका मोह नहीं छूटता वे राज्यके लोभसे राजपदके लिये अश्वमेध करते और मरनेसे डरना भूल जाते हैं। फलतः यह सब साधन मृत्युके भयको दूर करनेके लिये हैं। इनका साधन करके मनुष्य मृत्युपर वश कर लेता है। परन्तु यह सब कर्मकाण्ड अविद्या है। आत्मज्ञान या तत्वज्ञान

नहीं। यह तो क्षेत्र तय्यार करनेके साधन हैं। यह तो अन्तः-करण-रूप पात्रका मल-शोधन करनेके लिये माँजना और तपाना है। पात्रके शुद्ध और पवित्र हो जानेपर फिर उसमें अमृतरूप जलको रखा जा सकता है। अमृतको पानेका साधन ब्रह्म-विद्या है। वह आत्माका तत्व-ज्ञान है। जिसमें शरीर कर्ता, भोक्ता नहीं, आत्मा कर्ता, भोक्ता है। शरीर साधन है, उसके रहनेका घर है। वह पुराना हो जानेपर छूट जाता है, दूसरा फिर आ जाता है, आत्मा नहीं मरता है,वह नित्य है, चेतन है इत्यादि ब्रह्मविद्याके अभ्याससे पुरुषको अपने अमर आत्माका ज्ञान हो जाता है। वह मृत्युको तरकर अमृतका भोग करता है,—

योगवसिष्ठमें वाल्मीकि भी कहते हैं।

उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः।
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां जायते परमं पदम्॥

जैसे दो पक्षोंसे पक्षी उड़ा चला जाता है उसी प्रकार ज्ञान और कर्मके बलसे अभ्यासी पुरुष भी परम पद तक पहुंच जाता है।

[१२-१४]

ज्ञान और कर्म दो पक्षोंका वर्णन हो गया अब मुख और पुच्छ रूप सम्भूति और विनाशका वर्णन करते हैं।

हे शान्त! प्रत्येक पुरुष अपनेको पैदा हुआ देखता है। और औरोंको मरते हुए भी देखता है। उसपर विचार करता है। क्या मैं पहले न था, मैं कहां था? माताके पेटमें था। माताके पेटमें

कहाँसे आया ? रज-वीर्यसे आया। वहाँ कहाँसे आया ? अन्नसे आया। अन्नमें कहाँसे आया ? पृथ्वी, जलसे आया। वहाँ कहाँ से आया ? पता नहीं। ईश्वरकी अचिन्त्य माया प्रकृति सत्व-रजस्-तमोमयी थी, उसीमेंसे तो यह मेरा देह आया। वह तो अव्यक्त है, पता नहीं कैसी है ? वही प्रकृति है, वह अनिर्वचनीय है।

इसी प्रकार 'मैं कहाँ जाऊँगा ?' जहाँ ये सब मरकर जायँगे। ये परलोकमें जाँयगे। 'परलोक' कैसा है ? यह भी पता नहीं वह भी अव्यक्त है। ये अव्यक्तसे पैदा हुए अव्यक्तमें जायँगे। तो क्या यह सब संसार अव्यक्तसे पैदा हुआ अव्यक्तमें जायगा ? हाँ ! पर विचारक अपने आनेका विचार न करे जानेका ही विचार करे, तो क्या देखेगा ? वह देखेगा सब पदार्थ नश्वर हैं। सब नाशवान् हैं फिर मरकर पैदा नहीं होते। सबका अन्त वह मृत्यु है। सब चुटकीमें शून्य हो जायगा। हा ! ऐसा न हो।' यह शून्यान्धकार हृदयको घेर लेता है। यह असम्भूतिकी उपासना कहाती है। दूसरेका विनाश विचार न करके उत्पत्तिके विचारमें डूब जाते हैं। फलतः उसको कारण तो दीखता नहीं, उन्हें सब कार्यही कार्य दीख पड़ते हैं। उनको संसारके सब पदार्थ निष्प्रयोजन प्रतीत होते हैं। इससे भी वे दुःखित रहते हैं।

अन्धंतमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्यां रताः ॥
अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात्।

इति शुश्रुम धीराणां येनस्तद्व्याचचक्षिरे ॥
संभूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा संभूत्याऽमृतमश्नुते ॥

जो वस्तुओंको नश्वर ही नश्वर देखते हैं वे अँधेरेमें जा गिरते हैं। वे अपने नित्य आत्माको भी विनाश हुआ जानकर मृत्युसे भय खाते हैं और जो सब पदार्थोंको उत्पन्न हुआ देखते हैं वे अपने आत्माको जड़ पदार्थके समान उत्पन्न हुआ जानकर अपनेको पानीके बुलबुलेके समान तुच्छ जानते हैं और अमृतका आनन्द नहीं पाते। प्राचीन धीर विद्वान् पुरुष इस विनाशके तत्व-ज्ञानका फल कुछ और ही कहते हैं और उत्पत्ति तत्वके ज्ञानका फल दूसरा ही बतलाते हैं। जो व्यक्ति अपने आत्माके उत्पन्न होने और मर जाने दोनोंके तत्व ज्ञानका लाभ कर लेते हैं वे शरीरके नाश होनेपर भी आत्माको नष्ट होता नहीं देखते। वे इस जीर्ण नश्वर देहके चले जानेको साधारण जड़ धर्म समझकर मृत्युसे भय नहीं खाते। वे मृत्युपर वश कर लेते हैं। और जो उसी नित्य आत्माके देह-धारण करनेको ही उत्पन्न होना समझते हैं। वे अपनेको अमर और अनादि अनुभव करते हैं। तभी उन्हें अमृतका आनन्द मिलता है।

शान्तके हृदयमें संदिग्धकी शङ्काका विकल्प इस प्रकार उठा—

संदिग्ध—भगवन् श्रुतिमें है "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्' काम करते रहकर ही जीना चाहिये "एवं त्वयि नान्यथा

इतः अस्ति, न कर्म लिप्यते नरे" इससे और कोई मार्ग नहीं। इस प्रकार तुम्हें कर्मका बन्धन भी न लगेगा अर्थात् संगसे मुक्त होकर जीव बन्धनसे मुक्त हो जायगा। इस प्रकार कर्महीसे मोक्ष मिल जायगा। दूसरी श्रुति कहती है "न कर्मणा न प्रजया धनेन" यह आत्माका परम तत्व कर्मसे भी नहीं मिलता और न प्रजासे ही मिलता है। न धनसे ही प्राप्त होता है "प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा" यज्ञ आदि कर्म तो संसारके सागरके पार जानेके लिये पक्के जहाज नहीं है। इससे कर्मफल नित्य नहीं है। वह मिलकर भी हाथसे निकल जायगा। इसके साथ ही ज्ञानको ही मोक्ष का साधन बतलाया है—"तंज्ञात्वा मृत्यु मत्येति नान्यः पन्था विमुक्तये" उस परमपुरुषको जानकर ही इस संसारसे पार निकला जाता है। इसके बिना मुक्तिका दूसरा साधन नहीं है। भगवन्! आप यहाँ विद्या और अविद्या दोनोंको मोक्षका साधन कहते हैं। यह तो मेरा सन्देह और भी प्रबल हो जाता है। कहिये इसकी सङ्गति कैसे लगाऊँ?

सन्दिग्धका यह सन्देह सुनकर स्वामी शान्त कहने लगे—

हेशान्त! यह सन्देह करनेका स्थान नहीं। जिन ग्राम्य महिलाओंके पास सुवर्णके भूषण नहीं होते क्या वे आभूषण नहीं पहनतीं? वे भी पहनती ही हैं। वे लाखकी चुड़ियाँ, कौड़ियोंके हार, सीपकी बालियाँ और काँचके मनके पहनती हैं। ठीक इसी प्रकार जिनको परम आनन्द पदतक पहुं-

चनेके लिये ज्ञान-रूप चिन्तामणिका साधन नहीं मिलता वे क्रिया-काण्ड ही की शरण लेते हैं। जैसा कहा है—

अलब्धज्ञानदृष्टीनां क्रियामात्रं परायणम्।
यस्य नास्त्यम्बरं पट्टं कम्बलं किं त्यजत्यसौ॥

जिनको ज्ञानकी दृष्टिका आनन्द नहीं मिला वे क्रियामात्र पर ही सन्तोष करते हैं। जिसके पास रेशमी वस्त्र पहननेको नहीं क्या वह अपना मोटा कम्बल थोड़े ही फेंक देता है? हे शान्त! सुनो इसमें एक और भी रहस्य है। वेद तो प्रभुकी वाणी है। राजा अपनी प्रजाको दो ही प्रकारकी आज्ञा देता है एक विधि और दूसरी निषेधकी। वह या तो कहता है सब प्रजा एक दूसरेसे मिलकर रहो या दूसरी आज्ञा देता है लड़ाई मत करो। "प्रेम करो या मिलकर रहो" यह तो विधि है "लड़ाई मत करो" यह निषेध है। ठीक इसी प्रकार सबका मालिक ईश्वर भी वेदमें दो ही प्रकारकी आज्ञाएँ करता है। "तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः" उस ईश्वरके दिये भागसे अपने मन, वाणी, देहकी पालना करो। दूसरी आज्ञा है"मा गृधः कस्यस्विद् धनम्।" किसी दूसरेके धनपर लालच मत कर। क्योंकि "ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्च" इस दुनियामें जो कुछ भी है सो सबका मालिक ईश्वर है। वह उसमेंसे तुझे भी देता है। जो तुझे मिले उससे तू अपने जीवनकी पालना कर दूसरेके भाग्यकी वस्तुपर व्यर्थ आशा मत बाँध।

तटस्थ—स्वामिन् ! आपने जो कुछ कहा सो ठीक है परन्तु आगे वह विधि-निषेधका सम्बन्ध किस प्रकार जुड़ता है ? ब्रह्म-ज्ञानके प्रकरणमें विधिनिषेधका निर्वाह कैसे होता है ?

स्वामी शान्त—सुनो शान्त ! यह विचार करने योग्य बड़ी गम्भीर बात है। प्रभुकी वेदवाणीने विधि निषेधकी आज्ञाओंसे मनुष्यके लिये धर्मकी मर्यादा स्थापन की है। मनुष्यको बुरा कार्य करनेसे रोका है और अच्छे काम करनेकी आज्ञा दी है। इसीलिये कहा "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्" भले काम करते हुए ही जीना चाहो 'नान्यथा इतः' इससे दूसरे प्रकारके बुरे काम जिन्हें अकर्म और विकर्म कहा है उनको कभी मत करो। भले कर्म करना ही विद्या और बुरे काम करना ही अविद्या है। सत्कर्मोंसे आयु बढ़ती है, वही अमृत प्राप्त करनेके साधन हैं। बुरे काम ही मृत्यु है। वही अविद्या है। सत् कर्मोंका विधान और बुरे कर्मोंका निषेध यही विद्या और अविद्याका तत्व है। जिससे उत्तम निःश्रेयसकी प्राप्ति होती है वही विद्या है, जिससे निःश्रेयसका नाश होता है वही अविद्या है।

कर्म और अकर्म विधि और निषेध इनहीको सम्भूति और विनाश भी कहा जाता है। आत्मा उत्तम कर्मसे उत्तम लोकोंमें ज्ञानवान् होकर उत्पन्न होता है,यही सम्भूति है। वही निषिद्ध कर्मोंमें पड़कर आत्माका ज्ञान भूलकर अज्ञान योनियोंमें गिर जाता है यही उसका विनाश है। इन दोनोंका तत्व जानना चाहिये। विद्या और अवि-

द्या, संभूति और विनाश, विधि और निषेध दोनोंका आश्रय लेना चाहिये। तभी मनुष्य निःश्रेयस पदपर पहुंच सकता है। जैसे सुनो शान्त! एक पुरुष एक कदम आगे बढ़ता है, दो कदम पीछे हटता है, वह कभी अपने इष्ट स्थानपर नहीं पहुंच सकता है। गुरुने उसे उपदेश दिया कि, 'आगे बढ़ पीछे मत जा' तब उसने आगे ही कदम रखा, पीछे एक पग भी न रखा। वह अपने स्थानपर शीघ्र ही पहुंच गया। यदि गुरु कहता कि, 'आगे बढ़' तो वह आगे बढ़ता पर पीछे जानेका निषेध न होनेसे वह एक कदम बढ़कर दो कदम पीछे चला जाता और उसे अपनी भूल मालूम न होती। यदि गुरु कहता 'पीछे मत जा' तो पीछे न जाकर आगे भी न बढ़ता। इसलिये गुरुने कहा 'आगे भी बढ़ पीछे भी मत जा' तब उसने आगे बढ़ना शुरू किया और पीछे भी न गया एवं ठीक स्थानपर पहुंच गया। सुनो शांत! इसी प्रकार साधक विद्या और अविद्याके विधि-निषेधकी व्यवस्थासे परम अमृतमय पदतक पहुंच जाता है।

(१५)

अब विचार करो कि वह अमृत, वह सचाई, वह आत्मा, वह परम आनन्द; जिसकी खोजमें सब लगे हैं, जिसके प्राप्त करनेके लिये सभी परिश्रम कर रहे हैं, जिसके आश्रयपर सब रहकर अपना सर्वस्व इसकी प्राप्तिके लिये निछावर कर देते हैं। वह सुख कहाँ छिपा है? क्यों सबको नहीं मिलता? जब सबके हृदय-आकाशमें वह अखंड-

रस आनन्दघनका मेघ व्याप रहा है तब सबकी हृदय-भूमिमें वह अपनी अमृतमय वर्षा क्यों नहीं करता ? वह प्रकाश-स्वरूप सत्य क्यों स्वतः सबके हृदयमें नहीं खिल उठता ? उसको कौनसी वस्तु ढाँपे हुए है ?

वेद कहते हैं—

"हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम् ।
तत्त्वम्पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥"

"सोनेके बने हुए ढकनेसे उस सत्यका मुख छिपा है। हे पूषन् ! तू उसे खोल दे ताकि हम सत्यधर्मका दर्शन करें।"

यह पशु-धन है। पशुओंसे अन्न उत्पन्न होता है। अन्न भी धन है। भूमि भी धन है। सुवर्णसे सब ख़रीदा जा सकता है इसलिये सोना ही सबसे उत्तम धन है। उसने ही सब मनुष्योंको अपना दास बना रखा है। उसको देखकर मानव-जीव लोभमें आ जाता है, उसके लिये पाप करता है, उसके लिये झूठ बोलता है, उसके लिये कुकर्म करता है। वही सबके मनपर वश किये हुए है। उसके मोहमें आत्माकी सचाई छिप जाती है। परन्तु वह सोना भी इस शरीरकी रक्षाके लिये कुर्बान कर दिया जाता है। शरीरकी रक्षाके लिये सब धन निछावर हो जाता है। उससे भी बढ़िया यह काञ्चनमय देह है। वह आत्मा, वह सत्यधर्म, जो सचमुच इस देहको धारण किये हुए है, इस काञ्चनमय देहमें छिपा है। वही इस शरीरका पोषण करता है। वही इस शरीरकी रक्षा करता

है। उसके प्रति सम्बोधन करके द्रष्टा कहता है—"हे पूषन्! हे सूर्य! हे देहके धारक! हे सत्यस्वरूप आत्मन्! तुम्हारी सत्यता सोनेके पात्रसे ढकी है। देहरूप आवरण, देहरूप ढकना (पात्र) तुम्हें अपने भीतर छिपाये है। तुम उसे खोल दो। तुम उस ढकनेको हटा दो।" देहको कहाँसे खोल दो, देह तो मुर्दा है, शव है, कीड़े, मकोड़े, मक्खियाँ और सियार, गीदड़ इसको खा जाते हैं, इसमें क्या काञ्चनमय कान्ति है? कुछ भी नहीं। तो भी इसपर मोहमय लेप चढ़ा है। मोहके कब्जे इसमें लगे हैं, ममताकी कीलें इसमें जड़ी हैं। उनको खोल दो। तब अन्तःकरणकी तहोंमें हृदयनाथका मन्दिर खुल जायगा। उसमें बैठे सत्येश्वर महादेवका दर्शन होगा। वे ही साक्षात् चतुष्पाद् धर्मस्वरूप हैं। वह धर्म ही स्वयं वृषभ है। अन्तःकरण चतुष्टय उसके चार पैर हैं जिनपर वह गति करता है। दो आँखें, दो कान, दो नाक और एक रसना, ये सात ग्राहक इन्द्रियाँ सात हाथ हैं। वाणी ही उसका नाद घोष है। हृदय कण्ठ, और शिर इन स्थानों-पर वह स्वाधिष्ठान, मणिपूर और सहस्रदल चक्रोंमें बँधा है। वह सभी पुरुषोंमें विद्यमान वृषभ है। यही प्राणस्वरूप श्येन या गरुड़ है जिसके प्राणमय पक्षमेंसे छन्दोमय वाणीका शब्द सुनाई देता है। उसपर साक्षात् सहस्रदल:चक्रको लिये हुए चक्रधर ज्ञानमय विष्णु देहके हृदय-आकाशमें विचरते हैं। ये तो सब कल्पनामय अलङ्कार हैं। हे पूषन्! तुम वह ढकना उठा दो मैं तुम्हारा सत्य प्रकाशमय रूप देखूँ।

इसी प्रकार ब्रह्माण्डमें, सूर्यमण्डलमें ध्यान लगानेवाला शान्त मुमुक्षु सबके प्रकाशक, शक्तिके भण्डार सूर्यको देखकर उसमें छिपी हुई उस परब्रह्मकी सत्यताको देखता है। वही शक्तिमय प्रभु सब जगत्का पालक-पोषक है। उससे ही प्रार्थना करता है—"प्रभो पूषन्! तेरा सत्य-रूप इस हिरण्मय सूर्य-रूप काञ्चनसे बने हुए ढकनेसे ढका हुआ है। तू इसको खोल दे, मैं तेरा सत्यरूप देखूँ।

(१६)

पूषन्! एकर्षे! यम! सूर्य!
प्राजापत्य! व्यूहरश्मीन् समूह।
यत्ते तेजोरूपं कल्याणतमं,
पश्यामि, असावसौ पुरुषः, सोहमस्मि॥

तू सब जगत्का पालन करनेवाला है, अतः हे पूषन्! तू सबको देखनेवाला है, अतः हे यम! तू सबको प्रकाश देनेवाला है, अतः हे सूर्य! तू अपनी ज्ञानमय किरणोंको चारों तरफ फेंक! तू अपनी किरणोंको समेट ले। रूप, ओह! वह तेजोमय सुन्दर रूप! वह मोहन रूप! वह संसारभरके लिये कल्याण सुखोंकी वर्षा करनेवाला आनन्दघन रूप!!! उसे मैं देखता हूं, देखता हूं। देख रहा हूं वह, वह दूर! दूर! दूर! वह जो दूरपर है। वह जो ब्रह्माण्डभरका मालिक है, इसमें व्यापक है। वही तो मैं आत्मा हूं। इस देह-पिण्डमें मैं दूर गहराईपर पुरुष-रूपसे विद्यमान हूं! हाँ! हाँ! वही मैं हूं।

(१७)

हे शान्त ! यह प्राण क्या है ? वायु । जो सम्पूर्ण अन्नमय शरीरमें वह रहा है । यह अनिल जो सब देहोंमें प्राणसञ्चार कर रहा है । यह आत्मा क्या है ? अमृत । यह तो कभी मरता नहीं । यह शरीर क्या है ? ओह ! मुर्दा है, मट्टी है, राख है, जला दो । बस क्या है ? भस्म हुए पीछे इसका कुछ प्रयोजन नहीं । अन्तमें सब राख-का ढेर ही है । इसीसे वेद कहता है—

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तं शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर कृतं स्मर क्रतो स्मर कृतं स्मर ।

यह वायु है । यह नाकके मार्गसे भीतर जानेवाला प्राण भी उसी वायुका एक अंशरूप अनिल है और अहङ्कार करनेवाला मैं इस शरीरमें रहनेवाला हंस (पखेरू) आत्मा अमृत हूं और यह मकानके समान हड्डियाँ, मांस और चाम आदिसे चिना गया देह इसके बन्धनका स्थान है । इसमें मैं वासनारूप रस्सियोंसे बँधा हूं । मैंने ज्ञानरूप छुरीसे सब वासनाओंके बन्धन काट डाले । अब यह शरीर बहुत तुच्छ रह गया है । अब इसका मुझ साधक ब्रह्म-रस-पिपासुके लिये कोई प्रयोजन नहीं । यह मेरा कोई भाग नहीं । मैं कहाँ अमृतमय, कहाँ यह देह नश्वर अभी नाश हो जानेवाला ! इसको छोड़कर मैं तो परब्रह्मके साथ भेंट करनेके लिये जाता हूं और इस शरीरको जला देनेका आदेश करता हूं । अच्छा, इस शरीरको भस्म कर दो । इसका अंत हो जायगा । बस,जिस शरीरके चोलेको

मैंने निर्भय होकर छोड़ दिया, हे शांति! उसको जला डालनेसे वह नाश हो जाता है और उसका अंत हो जाता है। अब केवल आत्मा ही अमर, अमृतमय शेष रह जाता है। अब उस आत्माको चाहिये कि जिसके परम भक्तिभाव, परम स्नेह और परम जिज्ञासाके लिये वह आत्मा तड़प रहा था उसीका स्मरण करे।

ओ३म् ओ३म् ओ३म्
ओ३म् ओ३म् ओ३म्
ओ३म् ओ३म् ओ३म्
ओ३म् ओ३म् ओ३म्

क्योंकि वेद कहता है कि—

ओ३म् क्रतो स्मर कृतं स्मर! क्रतो स्मर कृतं स्मर!

हे आत्मन्! यह देह जल गया। उसका अब कुछ नहीं बचा। केवल अमर चैतन्यस्वरूप तू आत्मा ही बचा। हे आत्मन्! तू यजमान है। वह नारायण परमब्रह्म ज्ञानस्वरूप प्रभु परमगुरु तेरा पुरोहित है। उसकी साक्षात् उपस्थितिमें चारों वेदोंमें प्रतिपादित पवित्र यज्ञरूप कर्मोंका आचरण करके अपने शरीररूप वेदीमें मैंने तीनों अग्नियोंको धारण किया था और फिर अन्तःकरणरूप वेदीमें ज्ञानाग्निका स्थापन कर ज्ञान-यज्ञ किया! तू अब स्वयं तन्मय होकर प्रभुस्वरूप हो गया है। अतः हे क्रतो! ओ३म् स्मर! हे यज्ञ-मय आत्मन्! उस साक्षात् परमगुरु परब्रह्म ओङ्कारका स्मरण कर,

वही 'अक्षर' है। सब संसारका नाश होनेपर ज्ञानकी अग्निसे तेरे सब कर्म-बन्धनोंका नाश होनेपर भी उस ब्रह्मका नाश नहीं होता। तू उसीका स्मरण कर। उसको स्मरण करनेका सबसे उत्तम रूप 'ओ३म्'है। वह ज्ञानमय परम अक्षर 'अ' अपने ज्ञानके प्रकाशसे 'म्' मायामें फँसे 'ऊ' जीवको मार्ग दिखाकर अपनेमें मिला लेता है। इसी उस प्रभुकी महिमाको हे जीव! तू 'ओ३म्' 'ओ३म्' 'ओ३म्' कहकर स्मरण कर।

हे आत्मन् तू यज्ञमय विराट्, परम पुरुषका स्मरण करता २ तन्मय हो जा। वही सबका कर्त्ता है, वही क्रतु है। यह ब्रह्माण्ड उसीकी वेदी है। वह स्वयं ज्ञानमय अग्नि है। स्वयं यजमान है। तू तन्मय होकर—

कृतं स्मर!

अपनी जीवदशाके किये तुच्छ तुच्छ कर्मोंका स्मरण कर और साथ ही उस भगवान्की अपार कृपाका स्मरण कर। बड़े अनुग्रहसे उसने तुझे अपने ज्ञान-सामर्थ्यसे इस विशाल संसारमें लिप्त न रहने देकर अपने आनन्दमय रसमें मग्न कर लिया है।

हे क्रतो! हे क्रतो!! हे क्रतो!!!

कृतं..............स्मर! कृतं..............स्मर!!

हे शान्त! प्राचीन आचार्योंकी यह शैली है कि उपदेश समाप्त हो जानेपर वे अन्तिम वाक्यको दो वार उच्चारण किया करते हैं। जिससे शिष्यके हृदयपर शास्त्रकी वासना दृढ़ रूपसे जम जाय। इसीसे यह दो वार कहा गया है।

क्रतो स्मर, कृतं स्मर, क्रतो स्मर, कृतं स्मर।

यह उपनिषद् समाप्त हो गयी। अब फिर ज्ञानवान् मुमुक्षुको अपने भगवान्‌का स्मरण करके मङ्गल कर लेना चाहिये।

"मुमुक्षु" ज्ञानोपपदेशके बाद यह अनुभव करता है कि—

"मैं कर्त्ता हूं, मैं भोक्ता हूं। कहाँ जाऊँ? हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्!

"अग्ने नय सुपथा"

हे कुटिलमार्गसे हटाकर सीधे मार्गमें ले जानेवाले मार्गदर्शक! मुझे सुन्दर शुभ मार्गसे ले जा। मैं अकेला हूं, निष्किञ्चन हूं, तू आनन्दघन है, मैं दरिद्र हूं, तू भण्डारी है। मुझे आनन्दरूप धन चाहिये। "नय सुपथा रायेऽस्मान्" जो मैंने कमाया है वह कर्मफल रूप धन प्राप्त करानेके लिये मुझे शुभ मार्गसे ले जा। वाममार्गमें मत ले जा। हे देव!

"विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।"

तू तो सब कर्मों और ज्ञानोंका जाननेवाला है। हमारे पाप-पुण्य सबको जानता है।

"युयोधि अस्मज्जुहुराणम् एनः"

हमारे पाप हमसे दूर कर।

"भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम"

हम तुझे बहुत बहुत नमस्कार करते हैं।

ओ३म् पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ओ३म् शांतिः ! शांतिः !! शांतिः !!!

यह कहकर गुरु शान्त चुप हो गये और शिष्य शान्त भी शान्त होकर मनन करने लगे।

॥ इति स्वामि-शान्त-हृदय-विलसिता
वाजसनेय-संहितोपनिषत्-ज्ञानकथा सम्पूर्णा ॥

वीर कुँवर सिंह

जगदीशपुर-निवासी उज्जैन-क्षत्रियकुलतिलक बाबू कुँवर सिंह-की यह सुविस्तृत जीवनी है। इस पुस्तकमें महाराजा विक्रमादित्यसे लेकर सन् १८५७के गदर और बाबू अमर सिंहके देहान्त-कालतकका इतिहास है। ऐतिहासिक पुस्तकोंके सिवा हफ्तों बाबू साहबकी जन्मभूमिमें रह कर इसका सामग्री-संग्रह किया गया है। इसमें दस रङ्ग-बिरङ्गे चित्र दिये गये हैं। बाबू साहब-का प्रसिद्ध तिनरङ्गा शिकारी चित्र भी जिल्द पर है। बाबू कुँवर सिंहके जिस असली चित्रका दर्शन किसी भी ऐतिहासिकको नहीं हुआ था, वह भी बड़े परिश्रम और व्ययसे प्राप्त कर इस पुस्तकमें दे दिया गया है। इसके सिवा रेशमी जिल्दपर दुरङ्गा रैपर और बुक-मार्क भी दिये गये हैं। आज तक हिन्दीकी किसी भी पुस्तककी ऐसी सजावट नहीं हुई है। सचमुच इससे आपकी लाइब्रेरी जगमगा उठेगी। आज ही आर्डर दीजिये, नहीं तो दूसरे संस्करण तक पछताना पड़ेगा। इसके भूमिका-लेखक हैं आल इण्डिया कांग्रेस कमिटीके जेनरल सेक्रेटरी बाबू राजेन्द्र-प्रसादजी एम० ए०, एम० एल०। केवल लागत भर मूल्य २॥) और अजिल्दका २) है।

मैनेजर, भारतीपुस्तकमाला,

२२, सरकार लेन, कलकत्ता।

उपनिषत्-ज्ञान-कथा

सं० २

केन-उपनिषद्पर शान्तका शान्तिसे मनन शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है। उसमें उपनिषद्के बहुतसे गूढ़ रहस्योंको बड़ी ही सरल भाषा तथा मनोरञ्जक दृष्टान्तोंसे खोल खोल कर समझाया गया है। ज्ञान-कथाके रसपिपासु जन इस मालाकी ग्राहक-श्रेणीमें नाम लिखा दें और यथासमय बराबर ज्ञान-कथाका रस लें एवं मालाका सुख प्राप्त करें।

भवदीय,

प्रकाशक।